रमज़ान

तब्दीली और इन्क़िलाब का महीना

मौलाना मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

विषय-सूची

भूमिका 5
रमज़ान की बरकतें 7
रोज़ा क्या है? 13
■ रोज़ा : एक ज़रूरत 18
- फ़रिश्तों से मुशाबिहत (समरूपता) 19
- जिहाद की रूह 20
- हमदर्दी और ख़ैरख़ाही 20
- अल्लाह की अज़मत और बड़ाई का इज़हार 21
- शुक्रगुज़ारी 21
- आजिज़ी और विनम्रता 22
- हमारा रोज़ा 22

रोज़ा : एक फ़ितरी जिद्दोजुहद 25
रोज़ा और तज़किया-ए-नफ़्स 28
रमज़ान के महीने की अहमियत 37
- व्यक्तिगत और सामूहिक ज़िन्दगी में 37

■ ईदुल-फ़ित्र किस लिए? 42

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान निहायत रहमवाला है)

भूमिका

यह पुस्तक वास्तव में भारत के महान इस्लामी विद्वान मौलाना मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ साहब के उर्दू लेखों का हिन्दी अनुवाद है। ये लेख भारत की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। इन लेखों को पाठकों ने बहुत पसन्द किया और क़द्र की निगाह से देखा। इन लेखों की इसी अहमियत को देखते हुए फ़ैसला किया गया कि इन्हें जमा करके किताब की शक्ल में प्रकाशित किया जाए। अतः प्रिय अबुल-आला सैयद सुब्हानी ने यह मुबारक काम अंजाम दिया और उर्दू में एक किताब "रमज़ान : तब्दीली और इन्क़िलाब का महीना" नाम से प्रकाशित हो गई। हम उनके इस काम की सराहना करते हैं और उनके लिए अल्लाह से दुआ करते हैं कि वह उन्हें इसका अच्छा बदला दे।

मौलाना मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ साहब ने अपनी उर्दू किताब में निम्न भूमिका लिखी है उसे यहाँ नक़्ल करना मुफ़ीद मालूम होता है। मौलाना लिखते हैं—

"इनसान सिर्फ़ गोश्त-पोस्त नहीं है, बल्कि वह इसके सिवा कुछ और है। और इस गोश्त-पोस्त के सिवा जो कुछ है हक़ीक़त में वही बहुमूल्य है। लेकिन जो बहुमूल्य है उसकी तरफ़ तवज्जोह कम ही जाती है और जो वक़्ती और सामयिक चीज़ शरीर और उसकी ज़रूरतों की शक्ल में हमको मिली है हमारी पूरी तवज्जोह आमतौर से उसी की तरफ़ रहती है और हमारा रवैया ऐसा होता है कि मानो वक़्ती और सामयिक चीज़ें वक़्ती नहीं, बल्कि हमेशा रहनेवाली हैं। यह वह बुनियादी ग़लती है जिसकी वजह से इनसान अपने बुलन्द मक़ाम से गिर जाता है। अल्लाह ने फ़रमाया है कि निस्सन्देह हमने इनसान को बेहतरीन साख़्त (सर्वोत्तम संरचना के साथ) और फ़ितरत

(Nature) पर पैदा किया है। इससे ज़्यादा क़ीमती और बुलन्द चीज़ की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। इस साख़्त और संरचना का ख़ास ताल्लुक़ इनसान की रूह और उसके किरदार से है। इनसान के ख़यालात, जज़बात, सोच, फ़िक्र, इरादे और हौसले बिलकुल सही और बुलन्द न हों तो हक़ीक़त की निगाह में उसकी कोई क़द्रो-क़ीमत बाक़ी नहीं रहती।

ज़िन्दगी का यह वह पहलू है जो बुनियादी अहमियत रखता है। इससे सरसरी तौर पर गुज़र जाना किसी ज़ुल्म से कम नहीं। हम क्या हैं और क्या नहीं हैं? हमें क्या होना है और क्या नहीं होना है? यह सिर्फ़ पढ़ने-पढ़ाने और बातों का विषय नहीं है। इसके लिए ज़रूरी है कि कोई अमली और प्रेक्टिकल प्रोग्राम तय किया जाए, ताकि तसव्वुरात और ख़यालात हमारी ज़िन्दगी में उभरकर सामने आएँ। इसी मक़सद को हासिल करने के लिए साल का एक महीना रमज़ान का तय किया गया। इस महीने से क़ुरआन का ख़ास ताल्लुक़ भी है और क़ुरआन का असल मक़सद भी वही है जो रमज़ान के रोज़े का है। इसे तक़वा का नाम दिया गया है। तक़वा एक जामे और सारगर्भित शब्द है, जिसका ताल्लुक़ फ़िक्र और जज़्बे, रवैये और अमल सबसे है। यह ज़िन्दगी की समझ भी है, हक़ीक़त की समझ भी है और ख़ुदा की समझ भी।"

यह हिन्दी किताब हक़ीक़त में इसी उर्दू किताब का अनुवाद है जो इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (दिल्ली) द्वारा प्रकाशित कराया गया है। यह ट्रस्ट हिन्दी ज़बान में इस्लाम से सम्बन्धित पुस्तकें तैयार करने के नेक काम में लगा हुआ है। अल्लाह हमारे कामों को क़बूल फ़रमाए और लोगों को हमारे कामों से फ़ायदा उठाने की तौफ़ीक़ दे यही हमारी दुआ है।

—नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

सेक्रेट्री

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (दिल्ली)

रमज़ान की बरकतें

रमज़ान का मुबारक महीना आते ही फ़िज़ा में ख़ुशी की एक लहर दौड़ जाती है। हक़ीक़त यह है कि यह महीना नेकियों की बहार का महीना है। यह महीना हमारी तरबियत (प्रशिक्षण) के लिए आता है। इस महीने में अगर अपनी तरबियत की तरफ़ पूरी तवज्जोह दी जाए तो फिर इसके अच्छे असरात पूरे साल नज़र आते रहेंगे।

इस दुनिया में इनसान के भटकने और गुमराही को अपनाने के मौक़े हर जगह पाए जाते हैं। इसकी सख़्त ज़रूरत है कि आदमी अपनी तरबियत और किरदार को बनाने-सँवारने की तरफ़ ख़ास तौर से तवज्जोह दे और वह इस तरफ़ से कभी ग़ाफ़िल न हो। इस तरबियत की अहमियत को सामने रखते हुए क़ुरआन ने रमज़ान का पूरा एक महीना इसके लिए ख़ास कर दिया है। क़ुरआन में है—

> "ऐ ईमान लानेवालो! तुम पर रोज़े फ़र्ज़ किए गए हैं, जैसा कि तुमसे पहले लोगों पर फ़र्ज़ किए गए थे, ताकि तुम तक़वा हासिल करो।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-183)

इससे मालूम हुआ कि क़ुरआन से पहले भी लोगों पर रोज़ा रखना फ़र्ज़ किया गया था। यह रोज़ा जहाँ एक पवित्र और मुक़द्दस इबादत है, वहीं यह हमारी अख़लाक़ी और रूहानी तरबियत का बेहतरीन ज़रिआ भी है।

रोज़े का मक़सद यह है कि हमारे अन्दर तक़वा की ख़ूबी पैदा हो। हम बे-लगाम न हों। अल्लाह की बड़ाई और महानता हमारे सामने रहे। हम ख़ुद को ग़ैर-ज़िम्मेदार नहीं, बल्कि अल्लाह के आगे जवाबदेह समझने लग जाएँ। ज़िन्दगी के किसी मामले में भी वह रवैया इख़्तियार न करें जो ग़लत हो, नाइनसाफ़ी और ज़ुल्म पर आधारित हो। तक़वावाला होने का मतलब है God Conscious यानी जिसका दिल किसी पल भी अपने पैदा करनेवाले

और मालिक के एहसास और ख़याल से ख़ाली न हो, बल्कि यह ख़याल और एहसास बढ़ता ही चला जाए।

अपनी ज़िन्दगी में आदमी कोई-न-कोई अच्छा या बुरा किरदार ज़रूर अदा करता है। हमारी ज़िन्दगी में कौन-सा किरदार पाया जाए और हमारा आचरण कैसा हो? इस सिलसिले में क़ुरआन ने पूरी रहनुमाई कर दी है। अच्छे और ऊँचे किरदार के बग़ैर शख़्सियत मुकम्मल (Perfection of Personality) नहीं हो सकती। क़ुरआन के अध्ययन से यह मालूम होता है कि शख़्सियत की तकमील (Perfection of Personality) या रूह की पाकीज़गी ही मज़हब की तालीमात और शरीअत के अहकाम का अस्ल मक़सद है। इसी चीज़ को क़ुरआन ने तज़किया कहा है और बताया है कि रसूल की अस्ल ज़िम्मेदारी यह है कि वह अल्लाह की आयतों की तिलावत (पाठ) करे और ख़ुदा के हुक्मों और हिकमत (तत्वदर्शिता) की तालीम के ज़रिए से लोगों का तज़किया करे, यानी उनकी शख़्सियतों को निखारे और उन्हें विकसित करे। अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने ख़ुद भी साफ़-साफ़ फ़रमाया—

> "मैं इसी लिए भेजा गया हूँ कि अख़लाक़ी ख़ूबियों को तकमील (पूर्णता) तक पहुँचा दूँ।" (हदीस : बैहक़ी)

आदमी अख़लाक़ और किरदार के लिहाज़ से बुलन्द नहीं हो सकता जब तक कि वह यह न समझ ले कि भौतिकता और भौतिक लाभ ही ज़िन्दगी में सब कुछ नहीं है, बल्कि उसकी निगाह अस्ल में पाक और पवित्र ख़ुदा की उस ज़ात पर हो जिसने भौतिक ज़रूरतों का सामान भी जुटाया है, लेकिन वह नहीं चाहता कि हम कुछ दिनों के आराम और राहत को इतनी ज़्यादा अहमियत देने लग जाएँ कि ज़िन्दगी की बड़ी हक़ीक़तों और उसकी बुलन्द ज़रूरतों से बिलकुल बेख़बर होकर रह जाए।

रोज़े में आदमी भोर से लेकर सूरज डूबने तक खाने, पीने और सम्भोग आदि से रुका रहता है, लेकिन अपनी रूह के लिहाज़ से जिस चीज़ का नाम रोज़ा है वह यह है कि आदमी उस हक़ीक़त को देख ले जिसको दुनिया-परस्त

लोगों की निगाहें नहीं देख सकतीं। उसे अपनी इच्छाओं पर क़ाबू हो। रोज़े के लिए अरबी में 'सौम' शब्द आता है। 'सौम' के अस्ल मानी किसी काम से रुक जाने के हैं। थमी हुई हवा और दोपहर के वक़्त को भी 'सौम' कहते हैं, इस तसव्वुर के साथ कि सूरज बीच आसमान में रुक जाता है। रोज़ा सिर्फ़ इसी लिए नहीं रखा जाता है कि आदमी रोज़े की हालत में खाने-पीने और जिंसी ख़ाहिशात पूरी करने से अपने को रोके रखे। खाने-पीने से तो सिर्फ़ रोज़े की हालत में रुका रहे, लेकिन गुनाह और हर नापसन्दीदा रवैये से हमेशा के लिए रुक जाए। खाने-पीने की चाहत और जिंसी ख़ाहिश कोई नापसन्दीदा ख़ाहिश नहीं है। यह ख़ाहिश तो अल्लाह ने ख़ुद हमारे अन्दर रखी है। इनको ख़त्म कर देना या इनको दबा और कुचल देना मक़सद नहीं है। मक़सद सिर्फ़ यह है कि इन ख़ाहिशों को बे-क़ैद और बे-लगाम न रखा जाए, बल्कि इनको हदों और ज़ाबितों का पाबन्द बनाया जाए। वरना समाज फ़साद और बिगाड़ से भर जाएगा और इनसान ख़ुद अपनी क़द्रो-क़ीमत को भूल बैठेगा। रोज़े की हालत में आदमी हलाल खाने भी नहीं खाता, आम हालात में वह खाना खाए, मगर वह हराम कमाई का न हो। उसके अन्दर ताक़त तो हो, मगर ज़िन्दगी के लालच और लोभ की भेंट चढ़कर न रह जाए। मुँह में ज़बान तो हो, मगर वह झूठ बोलनेवाली न हो। उसके पास आँखें तो हों, मगर पाकीज़ा हों। ज़िन्दगी से दूर तो न भागे मगर ज़िन्दगी उसकी पवित्रता की दर्पण हो।

रोज़ा बताता है कि ज़िन्दगी का रिश्ता सिर्फ़ जिस्मानी ज़रूरतों से ही नहीं है। ज़िन्दगी में और भी कुछ चीज़ें हैं जो हमारी तवज्जोह की हक़दार हैं। रोज़ा बन्दे को अल्लाह की तरफ़ और ज़िन्दगी के ऊँचे मक़सद और बुलन्द हालतों की तरफ़ ध्यान दिलाता है, जिनको हासिल किए बग़ैर आम हैवानात और इनसानों के बीच हक़ीक़ी फ़र्क़ क़ायम नहीं हो सकता।

रोज़ेदार एक तरह से अपने-आपको अल्लाह के लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा फ़ारिग़ करता है। वह पूरे तौर पर अल्लाह की तरफ़ ध्यान लगाने की कोशिश करता है। इस लिहाज़ से ऐतिकाफ़ और रोज़े के बीच बड़ा गहरा रिश्ता और ताल्लुक़ पाया जाता है। इसी लिए रमज़ान के आख़िरी दिनों में ऐतिकाफ़ को

पसन्द किया गया है। ख़ुद नबी (सल्ल) रमज़ान के आख़िरी दस दिन ऐतिकाफ़ में गुज़ारते थे।

फिर रोज़े के ज़रिए से आदमी के अन्दर एक ख़ास ख़ूबी पैदा हो जाती है, जिसे हम सब्र और अज़ीमत की ख़ूबी कहते हैं। इस ख़ूबी के बग़ैर किसी ऊँचे किरदार का तसव्वुर भी नहीं किया जा सकता और न उसके बग़ैर दुनिया में कोई बड़ा कारनामा अंजाम दिया जा सकता है। रमज़ान में लगातार एक महीने तक सब्र और ज़ब्त (बरदाश्त) और अल्लाह की इताअत और फ़रमाँबरदारी की अमली प्रेक्टिस कराई जाती है। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने रमज़ान के बारे में फ़रमाया—

"वह सब्र का महीना है।" (हदीस : बैहक़ी)

रोज़ा हमें ग़रीबों की तकलीफ़ और उनकी भूख और बेबसी का एहसास दिलाता है और हमें इस बात पर उभारता है कि हम किसी को परेशानी में न छोड़ें। ज़रूरतमन्दों के साथ हमदर्दी से पेश आएँ। दुखी लोगों के दुख-दर्द में शरीक होने को अपना फ़र्ज़ समझें। इसी लिए रमज़ान के बारे में नबी (सल्ल॰) का यह फ़रमान भी है—

"वह एक-दूसरे के दुख-दर्द में शरीक होने और एक-दूसरे से हमदर्दी करने का महीना है।" (हदीस : बैहक़ी)

रोज़ा शुक्र को ज़ाहिर करना भी है। रोज़ा रखकर बन्दा इस बात को ज़ाहिर करता है कि वह अल्लाह को भूल नहीं सकता। वह दुनिया की सारी लज़्ज़तों को भूल सकता है लेकिन किसी हाल में भी अपने हक़ीक़ी मुहसिन (उपकारकर्ता) को नहीं भूल सकता। हम जानते हैं कि ज़िन्दगी की आबरू यह है कि बन्दे का ताल्लुक़ अल्लाह के साथ बहुत गहरा हो जाए। अल्लाह से ताल्लुक़ न हो तो जिन्दगी बे-वक़अत और बे-नूर व बे-रौनक़ हो जाती है। जिस तरह दीन आफ़ाक़ियत (सार्वभौमिकता) के बग़ैर अधूरा रहता है, ठीक उसी तरह ज़िन्दगी हमेशगी के तसव्वुर के बग़ैर बेमानी और अर्थहीन होकर रह जाती है। अल्लाह ज़िन्दगी का सरचश्मा (स्रोत) है। वह हमें हमेशा की ज़िन्दगी की ख़ुशख़बरी देता है। अल्लाह का सबसे बड़ा एहसान

इनसानियत पर यह है कि उसने सारे इनसानों की रहनुमाई के लिए क़ुरआन जैसी किताब उतारी। क़ुरआन के नाज़िल होने का मक़सद यह है कि इनसान अल्लाह की बड़ाई को तस्लीम करे। रोज़े का भी एक अहम मक़सद यह है, "ताकि तुम अल्लाह की बड़ाई करो।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-185) जिसकी अमली शक्ल तरावीह की नमाज़ और महीने के ख़त्म होने पर ईद के दिन दो रकअत नमाज़ है। रोज़ा रखकर बन्दा अल्लाह की बड़ाई के आगे सिर झुका देता है। दुनिया में अल्लाह की बड़ाई क़ायम हो, वह इस बात की ख़ाहिश रखता है। रोज़ेदार शख़्स भूख-प्यास बरदाश्त कर लेता है, लेकिन अल्लाह के हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी नहीं करता। वह जानता है कि वह अपने किसी काम को अल्लाह से नहीं छिपा सकता। इस तरह रोज़ा रखकर वह इस एहसास को ज़िन्दा रखता है कि उसका अल्लाह उससे कहीं दूर हरगिज़ नहीं है। उसकी मौजूदगी का शुऊर उसके अन्दर कितने ही नाज़ुक एहसासात को बेदार करता है और उसका दिल अल्लाह के ख़ौफ़ और उसकी मुहब्बत से भर जाता है।

रमज़ान का महीना रोज़े के लिए ख़ास कर देने की वजह से सबको एक साथ रोज़ा रखना पड़ता है। इस तरह एक साथ मिलकर रोज़ा रखने से पूरे माहौल की फ़िज़ा बदल जाती है। सारी फ़िज़ा रूहानी हो जाती है। कम हिम्मत और कमज़ोर इरादे के आदमी के लिए भी नेकी की राह अपनाना आसान हो जाता है।

प्यारे नबी (सल्ल) के फ़रमान और इस्लाम की तालीमात पर ग़ौर-फ़िक्र करने से जो चीज़ हमारे सामने आती है वह यह है कि अल्लाह के ग़ज़ब या जहन्नम की आग से आज़ाद होने और इनसान के नजात-याफ़ता होने की पहचान अगर कोई है तो यह कि आदमी बुराइयों से छुटकारा और मुक्ति पा ले। ज़ुल्म व सितम से अपना हाथ रोक ले। ख़ुदग़रज़ी और स्वार्थपरता की लानत से अपने को दूर रखे। अल्लाह के बन्दों के लिए उसके अन्दर नफ़रत के बजाय मुहब्बत हो। वह लोगों का मददगार और हमदर्द हो। सारे इनसानों की भलाई उसके सामने हो। हर तरह की तंगनज़री और तंगदिली से अपने को पाक रखे। यही सुबूत होगा कि अल्लाह से उसका रिश्ता मज़बूत और

पाएदार है और तक़वा और ख़ुदा-तरसी (ईशपरायणता और ईशभय) की ज़िन्दगी उसे हासिल है जो रमज़ान के आने का ख़ास मक़सद है।

यह रमज़ान हर साल आता है, ताकि हम अपनी कोताहियों और ग़लतियों की भरपाई कर सकें और अपने अन्दर तक़वा की ख़ूबी ज़्यादा-से-ज़्यादा पैदा करें। हम में से हर एक को इसका अभिलाषी होना चाहिए कि हम ख़ुदा से डरनेवाले और बेहतरीन इनसान बन सकें। अच्छे और बुलन्द अख़लाक़ में जो हुस्न पाया जाता है वह किसी फूल में नहीं पाया जाता और अच्छे-किरदार और अच्छे-अमल में जो कशिश और आकर्षण पाया जाता है उसे कहीं और तलाश नहीं किया जा सकता। क़ुरआन की परिभाषा में यही 'अल-हसना' है। अल्लाह की हमसे अस्ल माँग भी इसी की है। उसकी पवित्रता, पावनता और पाकीज़गी का तक़ाज़ा हमसे यही होना भी चाहिए था। रमज़ान का महीना इसी लिए आता है, ताकि इस महीने में उस मतलूब (वांछित) चीज़ को हासिल करने के लिए हम ख़ास तौर से कोशिश करें।

रोज़ा क्या है?

इनसान की फ़ितरी सलाहियतों और क़ुव्वतों के उभरने और विकास पाने के लिए तालीम और तरबियत (शिक्षण-प्रशिक्षण) की ज़रूरत होती है। इसके अलावा आमतौर पर ज़हनों पर भौतिक फ़ायदों का पहलू इतना ग़ालिब होता है कि आदमी के लिए यह हद दर्जा मुश्किल होता है कि वह चीज़ों को उनकी फ़ितरी पाकीज़गी में देख सके और ज़िन्दगी की अहम क़द्रों (मूल्यों) और बेशक़ीमत हक़ीक़तों को समझ सके। रोज़ा एक पाकीज़ा इबादत और हमारी रूहानी और अख़लाक़ी तरबियत का एक बेहतरीन ज़रिआ है। रोज़े का अस्ल मक़सद रूह की पाकीज़गी और तक़वा है। चुनांचे क़ुरआन में है—

> "ऐ ईमान लानेवालो ! तुम पर रोज़े फ़र्ज़ किए गए हैं, जैसा कि तुमसे पहले लोगों पर फ़र्ज किए गए थे, ताकि तुम तक़वा हासिल करो।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-183)

जब तक आदमी में ज़ब्ते-नफ़्स (आत्म-नियंत्रण) न हो, उसके अन्दर तक़वा की कैफ़ियत पैदा नहीं हो सकती। जिस इनसान पर मन की इच्छाओं का ग़लबा हो उसे न अल्लाह की अज़मत और महानता का एहसास होता है और न वह ज़िन्दगी की बड़ी हक़ीक़तों और ज़रूरतों को महसूस कर पाता है। उसके ऊपर ग़ालिब हैवानियत उसे इसका मौक़ा ही नहीं देती कि वह अपनी फ़ितरत के हक़ीक़ी तक़ाज़ों की तरफ़ तवज्जोह दे सके। रोज़ा इस बात का अमली इज़हार है कि खाने-पीने और जिंसी ख़ाहिश को पूरा करने के अलावा भी कोई चीज़ है जो हमारी तवज्जोह की तालिब है। रोज़ा बन्दे को अल्लाह की तरफ़ और ज़िन्दगी की उन आला हक़ीक़तों की तरफ़ मुतवज्जेह करता है, जो इनसानी ज़िन्दगी का अस्ल सरमाया हैं। वह बन्दे को पाकीज़गी के उस ऊँचे मक़ाम पर पहुँचाता है जहाँ बन्दा अपने रब से बेहद क़रीब हो जाता है, जहाँ अंधेरे छँट जाते हैं और नफ़्सियाती पर्दे उठ जाते हैं। इसी हक़ीक़त को सामने रखते हुए आलिमों ने कहा है—

"कितने ही लोग रोज़े से नहीं होते, इसके बावजूद हक़ीक़त के ऐतिबार से वे रोज़ेदार होते हैं और कितने ही लोग रोज़ा रखते हुए भी हक़ीक़त में रोज़ेदार नहीं होते।"

रोज़ा ज़ाहिर में इस चीज़ का नाम है कि आदमी भोर के वक़्त से लेकर सूरज डूबने तक खाने-पीने और सम्भोग आदि से रुका रहे, लेकिन अपनी रूह के लिहाज़ से रोज़ा जिस चीज़ का नाम है वह यह है कि आदमी को अपनी ख़ाहिशात और इच्छाओं पर क़ाबू हो और उसे तक़वा की ज़िन्दगी हासिल हो। कभी-कभी ऐसा होता है कि आदमी ज़ाहिर में तो रोज़े से होता है, लेकिन हक़ीक़त में उसका रोज़ा नहीं होता। न उसकी निगाहें पाक होती हैं न उसकी ज़िन्दगी पाकीज़गी और ख़ुदातरसी का दर्पण होती है।

रोज़े के लिए क़ुरआन ने जो शब्द इस्तेमाल किया है वह 'सौम' है। इसके शाब्दिक अर्थ बचने और ख़ामोशी के हैं। इमाम राग़िब फ़रमाते हैं—

> "सौम के अस्ल मानी किसी काम से रुक जाने के हैं, चाहे उसका ताल्लुक़ खाने-पीने से हो या बातचीत करने और चलने-फिरने से हो। इसी वजह से घोड़ा चलने-फिरने या चारा खाने से रुक जाए तो उसे साइम कहते हैं।
>
> रुकी हुई हवा और दोपहर के वक़्त को भी 'सौम' कहते हैं, इस तसव्वुर के साथ कि उस वक़्त सूरज बीच आसमान में रुक जाता है।"

इस व्याख्या से मालूम हुआ कि हक़ीक़त में किसी चीज़ से रुक जाने की कैफ़ियत का नाम 'सौम' है। रोज़ा हक़ीक़त में उसी शख़्स का है जो रोज़े की हालत में तो खाने-पीने और सम्भोग आदि से रुक जाए, लेकिन गुनाहों के करने और नापसन्दीदा रवैये को हमेशा के लिए छोड़ दे।

रोज़ा अपने-आपको अल्लाह के लिए हर चीज़ से फ़ारिग़ कर लेने और मुकम्मल तौर पर अल्लाह की तरफ़ मुतवज्जेह होने का नाम है। इस पहलू से रोज़े का ऐतिकाफ़ से बड़ा गहरा ताल्लुक़ है। यही वजह है कि ऐतिकाफ़ के साथ रोज़ा रखना ज़रूरी समझा गया है, बल्कि पहले की शरीअत में

रोज़े की हालत में बातचीत से भी बचा जाता था। चुनांचे क़ुरआन में है कि हज़रत ईसा (अलैहिस्सलाम) की पैदाइश के मौक़े पर हज़रत मरयम (अलैहिस्सलाम) बेहद परेशान हुईं और उन्होंने यहाँ तक कहा कि काश मैं इससे पहले मर जाती और लोग मुझे बिलकुल भूल जाते। उस वक़्त उन्हें तसल्ली देते हुए कहा गया—

> "फिर अगर तू किसी आदमी को देखे तो (इशारे से) कह देना कि मैंने रहमान के लिए रोज़े की नज़र मानी है, मैं आज किसी आदमी से न बोलूँगी।" (क़ुरआन, सूरा-19 मरयम, आयत-26)

रोज़े में इनसान को फ़रिश्तों से बड़ी हद तक मुशाबिहत (समरूपता) हासिल हो जाती है। फ़रिश्ते खाने-पीने की सारी ज़रूरतों से बेनियाज़ हैं। अल्लाह की तारीफ़ और प्रशंसा ही उनकी ग़िज़ा है। रोज़े की हालत में मोमिन बन्दा भी मन की इच्छाओं और खाना-पीना छोड़कर ख़ुदा की बन्दगी और इबादत में लगा नज़र आता है।

रोज़ा रखकर बन्दा अपने मन की इच्छाओं पर क़ाबू पाता है। उस शख़्स से जो अपने मन को क़ाबू में न कर सके आप इस बात की उम्मीद नहीं कर सकते कि वह हक़ की हिमायत और बातिल (असत्य) के ख़ातिमे के लिए जान तोड़ कोशिश कर सकता है। जिहाद के लिए सब्र और हौसला दोनों की ज़रूरत है। सब्र और हौसला रोज़े की ख़ूबियों में से हैं। इसी लिए प्यारे नबी (सल्ल॰) ने रोज़े के महीने को 'सब्र का महीना' कहा है। रमज़ान के महीने में लगातार एक महीने तक सब्र और ज़ब्त और अल्लाह की फ़रमाँबरदारी की प्रेक्टिस कराई जाती है।

रोज़ा बहुत ही पाकीज़ा इबादत है। रोज़ा अल्लाह की बड़ाई और महानता का प्रतीक है और शुक्र के इज़हार का ज़रिआ भी। रोज़े के ताल्लुक़ से क़ुरआन में जहाँ "ताकि तक़वा हासिल करो" फ़रमाया गया है वहीं यह भी फ़रमाया गया है—

> "और ताकि इस हिदायत पर जो तुम्हें दी गई है अल्लाह की बड़ाई करो और ताकि तुम (उसका) शुक्र करो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-185)

इनसानों पर यूँ तो अल्लाह के अनगिनत एहसान हैं, लेकिन उसका सबसे बड़ा एहसान यह है कि उसने हमें क़ुरआन जैसी नेमत दी। क़ुरआन ने इनसानों को हमेशा की ज़िन्दगी का रास्ता दिखाया। इनसान को अख़लाक़ के उस बुलन्द मरतबे की पहचान कराई, जिसका आम हालात में तसव्वुर भी नहीं किया जा सकता था। रोज़ा रखकर बन्दा अल्लाह की उस महान देन और बख़शिश पर ख़ुशी और शुक्रगुज़ारी का इज़हार करता है। इनसान अल्लाह का बन्दा और उसका इबादतगुज़ार है। अल्लाह उसका मालिक और पूज्य प्रभु (माबूद) है। इनसान के लिए ख़ुशी और प्रसन्नता का बेहतरीन और कामिल ज़रिआ वही है जिससे वह ताल्लुक़ और रिश्ता ज़ाहिर होता है जो रिश्ता और ताल्लुक़ उसका अपने अल्लाह से है।

हम उसके हैं हमारा पूछना क्या!

यह ताल्लुक़ इस बात को भी ज़ाहिर करता है कि इनसान फ़ितरी तौर पर अल्लाह के एहसानों को तस्लीम करता है, जो कि शुक्र की अस्ल बुनियाद है। रमज़ान का महीना ख़ास तौर पर रोज़े के लिए इसलिए चुना गया कि यही वह मुबारक महीना है, जिसमें क़ुरआन उतरना शुरू हुआ। क़ुरआन के उतरने और रोज़े में बड़ा गहरा ताल्लुक़ पाया जाता है। क़ुरआन जिन मक़सदों के तेहत नाज़िल हुआ है रोज़ा उनको हासिल करने में मददगार साबित होता है।

रमज़ान में एक साथ मिलकर रोज़ा रखने से नेकी और रूहानियत पैदा हो जाती है, जिसका दिलों पर गहरा असर पड़ता है। कम हिम्मत और कमज़ोर इरादे के आदमी के लिए भी नेकी और तक़वा की राह पर चलना आसान हो जाता है। कामयाब वही है जिस पर यह हक़ीक़त खुल गई कि उसकी ज़िम्मेदारी सिर्फ़ रोज़े के ज़ाहिरी आदाब और शर्तों की पाबन्दी तक ही महदूद नहीं है, बल्कि उसका फ़र्ज़ यह भी है कि वह रोज़े के अस्ल मक़सद से ग़ाफ़िल न हो। रोज़े का अस्ल मक़सद और उद्देश्य सिर्फ़ रोज़े के ज़माने तक मतलूब नहीं है, बल्कि इसका ताल्लुक़ इनसान की पूरी ज़िन्दगी से है। पुरानी आसमानी किताबों में भी ऐसे रोज़ों को बे-वज़न ठहराया गया है जिनका तक़वा, इख़लास और ऊँचे अख़लाक़ से कोई ताल्लुक़ न हो। नीचे के वाक्य कितने असरदार हैं–

वे कहते हैं—"क्या कारण है कि हमने तो उपवास रखा, परन्तु तूने इसकी सुधि नहीं ली। हमने दुख उठाया परन्तु तूने कुछ ध्यान नहीं दिया।" सुनो : उपवास के दिन तुम अपनी ही इच्छा पूरी करते हो और अपने सेवकों से कठिन कार्यों को कराते हो। सुनो तुम्हारे उपवास का फल यह होता है कि तुम उपवास में लड़ते और झगड़ते और दुष्टता से घूँसे मारते हो। जैसा उपवास तुम आजकल रखते हो उससे तुम्हारी प्रार्थना ऊपर नहीं सुनाई देगी जिस उपवास से मैं प्रसन्न होता हूँ अर्थात् जिसमें मनुष्य स्वयं को दीन करे क्या तुम इस प्रकार करते हो। फिर सिर को झाड़ के समान झुकाना अपने नीचे टाट बिछाना और राख फैलाने ही को उपवास और यहोवा (ख़ुदा) को प्रसन्न करने का दिन कहते हो। जिस उपवास से मैं प्रसन्न होता हूँ वह क्या यह नहीं कि अन्याय से बनाए हुए दासों और अंधेर सहनेवालों का जुआ तोड़कर उनको छुड़ा लेना और सब जुओं को टुकड़े-टुकड़े कर देना। क्या वह यह नहीं है कि अपनी रोटी भूखों को बाँट देना, अनाथ और मारे-मारे फिरते हुओं को अपने घर ले आना, किसी को नंगा देखकर वस्त्र पहनाना और अपने जाति-भाइयों से अपने को न छिपाना अब तेरा प्रकाश पौ फटने के समान चमकेगा और तू शीघ्र चंगा हो जाएगा। तब तू पुकारेगा और यहोवा (प्रभु) उत्तर देगा। तू दुहाई देगा और वह कहेगा मैं यहाँ हूँ। यदि तू अंधेर करना और उँगली उठाना और दुष्ट बातें बोलना छोड़ दे। उदारता से भूखे की सहायता करे और दीन-दुखियों को सन्तुष्ट करे। (यशायाह 58/3-11)

अगर रोज़े से हक़ीक़त में फ़ायदा उठाया जाए तो वह आदमी को उस मक़ाम पर खड़ा कर देता है कि उसे हर वक़्त अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास रहता है। उसके रात-दिन कभी बेख़ौफ़ी और बेपरवाई के साथ बसर नहीं होते। वह हमेशा गुनाहों और नापसन्दीदा कामों से बचेगा और अपनी ज़िन्दगी के मक़सद को सामने रखेगा।

रोज़ा : एक ज़रूरत

इस्लाम ने अस्ल में जिस चीज़ का मुतालबा इनसान से किया है वह इसके सिवा और कुछ नहीं है कि इनसान अपनी फ़ितरत के अस्ल तक़ाज़ों को समझे और उन्हें पूरा करने की कोशिश करे। वह्य के ज़रिए अल्लाह ने इनसान को उसकी अपनी ही फ़ितरत के तक़ाज़े याद दिलाए हैं। अल्लाह ने इनसान पर अपनी ख़ास मेहरबानियाँ की हैं। उसे आम मख़लूक़ात (सृष्टि) के मुक़ाबले में इज़्ज़त, उच्चता और महानता दी है। उसे यह सलाहियत दी है कि वह ज़िन्दगी के बड़े मक़सद की जानकारी हासिल कर सके। यही चीज़ है जो उसे आम जानदारों से बिलकुल अलग करती है। लेकिन कम लोग हैं जिन्हें इसका सही एहसास है। आमतौर पर ज़हनों पर वही पहलू ग़ालिब रहता है जिसमें उसका फ़ायदा होता है। ऐसी सूरत में किसी चीज़ को उसकी फ़ितरी पाकीज़गी में देखना मुमकिन नहीं रहता। यही वजह है कि आमतौर से लोग ज़िन्दगी की अहम क़द्रों, मूल्यों और निहायत क़ीमती हक़ीक़तों को समझ नहीं पाते हैं।

इनसान की फ़ितरत कुछ इस तरह की है कि उसकी फ़ितरी सलाहियतों और कुव्वतों के उभरने और विकास के लिए तालीम और तरबियत की ज़रूरत पेश आती है। रोज़ा, जिसे अल्लाह ने हम पर फ़र्ज़ किया है, एक निहायत पाकीज़ा इबादत ही नहीं, बल्कि वह हमारी तरबियत का एक बेहतरीन ज़रिआ भी है। रोज़े का अस्ल मक़सद रूह की पाकीज़गी और तक़वा है। पाकीज़गी हासिल करने और तक़वा के मतलूब मक़ाम तक पहुँचने के लिए रोज़ा एक अहम ज़रिए की हैसियत रखता है। यही वजह है कि रोज़ा पिछली उम्मतों पर भी फ़र्ज़ रहा है।

ज़ब्ते-नफ़्स (Self Control) के बग़ैर इनसान के अन्दर तक़वा की कैफ़ियत पैदा नहीं हो सकती। रोज़ा ज़ब्ते-नफ़्स का एक बहुत ही असरदार और फ़ितरी ज़रिआ है। इसके ज़रिए से इनसान अपने मन की इच्छाओं पर क़ाबू पा लेता है।

इच्छाओं का ग़ुलाम इनसान अल्लाह की महानता से बेख़बर होता है। उसकी इच्छाएँ उसे ज़िन्दगी की बड़ी हक़ीक़तों और ज़रूरतों की तरफ़ से ग़ाफ़िल बना देती हैं। यह जो कहा गया है कि अल्लाह के नज़दीक भरे हुए पेट से ज़्यादा नफ़रत के क़ाबिल कोई और चीज़ नहीं है, तो इसकी वजह यही है कि ऐसा आदमी ग़फ़लत का शिकार होता है। हैवानियत का ग़लबा उसे इसका मौक़ा ही नहीं देता कि वह अपनी फ़ितरत के हक़ीक़ी तक़ाज़ों की तरफ़ ध्यान दे सके। रोज़ा इस बात का अमली इज़हार है कि खाने-पीने और जिंसी ख़ाहिश (यौन-इच्छा) को पूरा करने के अलावा भी कोई चीज़ है जो हमारी पूरी तवज्जोह चाहती है। रोज़ा ज़ाहिर में इसका नाम है कि आदमी भोर के वक़्त से लेकर सूरज डूबने तक खाने-पीने और सम्भोग आदि से रुका रहे, लेकिन अपनी रूह के ऐतिबार से रोज़ा जिस चीज़ का नाम है वह यह है कि आदमी को अपनी ख़ाहिशों पर क़ाबू हो और उसे तक़वा की ज़िन्दगी हासिल हो। इसी हक़ीक़त को सामने रखते हुए कुछ आलिमों ने कहा है—

> "कितने ही लोग रोज़े से नहीं होते, इसके बावजूद हक़ीक़त के ऐतिबार से वे रोज़ेदार होते हैं और कितने ही लोग रोज़ा रखते हुए भी हक़ीक़त में रोज़ेदार नहीं होते।"

इसका मतलब यही है कि कितने आदमी ज़ाहिर में तो रोज़े से होते हैं, लेकिन हक़ीक़त की निगाह से देखा जाए तो उनका रोज़ा नहीं होता। तक़वा और पाकीज़गी की ज़िन्दगी उन्हें हासिल नहीं होती। इसके बरख़िलाफ़ कितने लोग ऐसे होते हैं जो रोज़ेदार न होने की हालत में भी हक़ीक़त के ऐतिबार से रोज़ेदार होते हैं। उनके कान ग़ीबत और परनिन्दा नहीं सुनते, उनकी निगाहें पाकबाज़ और उनकी ज़िन्दगी पाकीज़गी और ख़ुदातरसी का दर्पण होती है। यह बात अगर हम में पैदा न हो सकी तो मानो हमने सिरे से रोज़ा ही नहीं रखा।

फ़रिश्तों से मुशाबिहत (समरूपता)

रोज़े में इनसान को फ़रिश्तों से एक तरह की मुशाबिहत हासिल होती है। फ़रिश्ते खाने-पीने की सारी ज़रूरतों से बेनियाज़ हैं। अल्लाह की तस्बीह

और पाकीज़गी (महिमागान) बयान करना ही उनकी ग़िज़ा और भोजन है। रोज़े में इनसान भी मन की इच्छाओं को छोड़कर अल्लाह की इताअत और इबादत में लग जाता है।

जिहाद की रूह

हक़ से मुहब्बत और बातिल से नफ़रत इनसान की फ़ितरत का तक़ाज़ा है। हक़ से मुहब्बत का हक़ इनसान से उसी वक़्त अदा हो सकता है जबकि उसे अपनी क़ुव्वतों, अपनी ख़ाहिशों और अपने उन जज़बात पर क़ाबू हासिल हो जो उसे सही रास्ते से हटाकर बातिल राहों पर लगा देते हैं। अपनी क़ुव्वतों पर क़ाबू पाने के लिए जिद्दोजुहद करना सबसे पहली शर्त है। रोज़ा रखकर इनसान अपने मन से जिहाद शुरू कर देता है। उस शख़्स से, जो अपने नफ़्स को क़ाबू में न कर सके, इस बात की उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह हक़ की हिमायत और बातिल (असत्य) को मिटाने के लिए जान तोड़ कोशिश कर सकता है। सब्र और हौसले के बग़ैर जिहाद मुमकिन नहीं और सब्र व हौसला रोज़े की ख़ूबियों में से हैं। इसी लिए प्यारे नबी (सल्ल॰) ने रोज़े के महीने को 'सब्र का महीना' फ़रमाया है।

हमदर्दी और ख़ैरख़ाही

रोज़े से दौलतमन्द शख़्स को भी इस बात का एहसास हो जाता है कि भूख और फ़ाक़े से इनसान का क्या हाल होता है। ऐशो-आराम की ज़िन्दगी में इनसान को दूसरों की तकलीफ़ और भूख-प्यास का एहसास नहीं हो पाता। ऐसी हालत में इसका पूरा अन्देशा होता है कि वह इनसानी ख़ूबियों और हमदर्दी के जज़्बे से बिलकुल महरूम हो जाए। रोज़े की हालत में आदमी को भूख-प्यास का अमली तजरिबा होता है। इस तरह आदमी के अन्दर फ़ितरी तौर पर यह एहसास उभरता है कि वह मुहताजों और ग़रीबों के साथ हमदर्दी से पेश आए और उन्हें उनकी परेशानी में न छोड़ दे। नबी (सल्ल॰) रमज़ान के महीने को 'हमदर्दी का महीना' फ़रमाते थे और इस महीने में आप ज़रूरतमन्द लोगों पर बहुत ज़्यादा ख़र्च करते थे।

अल्लाह की अज़मत और बड़ाई का इज़हार

रोज़ा अल्लाह की बड़ाई और अज़मत का इज़हार है। रमज़ान के महीने में एक तरफ़ बन्दे की बन्दगी और ग़ुलामी का इज़हार होता है, दूसरी तरफ़ अल्लाह के मालिक और बड़े होने का इज़हार होता है।

शुक्रगुज़ारी

रोज़ा जिस तरह सरापा तक़वा और तक़वा को हासिल करने का सबसे क़रीबी ज़रिआ है, उसी तरह वह सरापा शुक्रगुज़ारी भी है और इसमें लोगों को अल्लाह का शुक्रगुज़ार बन्दा बनाने की ख़ासियत भी पाई जाती है। रोज़े के बारे में जहाँ यह कहा गया कि "ताकि तुम तक़वा हासिल करो" वहीं यह भी फ़रमाया गया है—

> "ताकि इस हिदायत पर जो उसने तुम्हें बख़्शी है, अल्लाह की बड़ाई करो और ताकि तुम (उसका) शुक्र करो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-185)

रोज़ा निहायत पाकीज़ा इबादत है। इसकी हैसियत सिर्फ़ तरबियती कोर्स की नहीं है। यही वजह है कि रोज़ा शुक्र के इज़हार का ज़रिआ बन सका। इनसानों पर अल्लाह के बेशुमार एहसान हैं। उसका सबसे बड़ा एहसान यह है कि उसने हमें क़ुरआन जैसी नेमत दी। क़ुरआन बन्दों के लिए सबसे बड़ी नेमत और रहमत है। क़ुरआन ने इनसान को हमेशा की ज़िन्दगी और हमेशा की कामयाबी का रास्ता दिखाया। इनसान को अख़लाक़ के उस बुलन्द मरतबे पर खड़ा किया जिसका तसव्वुर भी नहीं किया जा सकता था। रोज़ा रखकर बन्दा उस नेमत पर ख़ुशी और शुक्रगुज़ारी का इज़हार करता है। इनसान के बाइज़्ज़त और बुलन्द होने की अस्ल चीज़ हक़ीक़त में वह ताल्लुक़ और निस्बत है जो उसके और महान ख़ुदा के बीच पाया जाता है।

इनसान के लिए ख़ुशी के इज़हार का बेहतरीन और कामिल ज़रिआ वही है जिससे बन्दे और अल्लाह के बीच पाए जानेवाले ताल्लुक़ का इज़हार होता हो। यही वजह है कि दोनों ईद के मौक़े पर अपनी ख़ुशी का इज़हार हम ख़ास तौर पर तकबीर और नमाज़ के ज़रिए करते हैं। ये नमाज़ें और तकबीर

ख़ुशी का इज़हार भी हैं और अल्लाह के सामने बन्दे की तरफ़ से शुक्र की अदायगी भी। इसी तरह रोज़े से भी शुक्र का अमली इज़हार होता है। अल्लाह ने क़ुरआन नाज़िल फ़रमाकर बन्दों पर अपनी नेमत पूरी कर दी। बन्दे भी इसकी ख़ुशी और शुक्रगुज़ारी में रोज़ा रखते और मुकम्मल पाकीज़गी के साथ अल्लाह की तरफ़ मुतवज्जेह होते हैं।

आजिज़ी और विनम्रता

रोज़ा सरापा विनम्रता और आजिज़ी का इज़हार भी है। यही वजह है कि गुनाहों के कफ़्फ़ारे (प्रायश्चित) में रोज़े का बड़ा दख़ल है। इसलिए शरीअत में कफ़्फ़ारे के तौर पर भी रोज़ा रखने का हुक्म आया है।

पुरानी आसमानी किताबों में भी इसकी तरफ़ इशारा मिलता है कि रोज़ा सरापा आजिज़ी और विनम्रता है। इसलिए दुआ की क़बूलियत और अल्लाह की रहमत को अपनी तरफ़ मुतवज्जेह करने में इसका बड़ा दख़ल है। जैसा कि बाइबल में कहा गया–

> यहोवा (प्रभु) अपने उस दल के आगे अपना शब्द सुनाता है क्योंकि उसकी सेना बहुत ही बड़ी है। जो अपना वचन पूरा करनेवाला है। वह सामर्थ्यवान है। क्योंकि यहोवा (प्रभु) का दिन बड़ा और अति भयानक है। उसको कौन सह सकेगा। तो भी यहोवा की यह वाणी है : "अभी भी सुनो, उपवास के साथ रोते-पीटते अपने पूरे मन से फिरकर मेरे पास आओ।" अपने वस्त्र नहीं, अपने मन ही को फाड़कर। अपने परमेश्वर यहोवा की ओर फिरो, क्योंकि वह अनुग्रहकारी, दयालु, विलम्ब से क्रोध करनेवाला, करुणा निधान और दुख देकर पछतानेवाला है।" (योएल 2/11-13)

हमारा रोज़ा

आज हम रोज़ा रखते हैं, फिर भी उससे वे नतीजे हासिल नहीं होते जो फ़ितरी तौर पर उससे हासिल होने चाहिएँ। इसकी वजह हक़ीक़त में यह है कि हम रोज़ा तो रखते हैं, मगर उसके पूरे आदाब का ख़याल नहीं रखते। रोज़े में खाने-पीने से तो ज़रूर रुक जाते हैं, लेकिन उन बहुत-सी बातों से

नहीं रुकते जिनसे हमें बचने का हुक्म दिया गया है। ज़ाहिर में हम रोज़े से होते हैं लेकिन हमारे शरीर के सभी अंग और ज़ाहिरी और अन्दरूनी हिस्से और जज़बात रोज़े से नहीं होते। न तो हम अपने पाँव और अपनी निगाह और दिल को बुराई से रोकते हैं और न हमारी ज़बानें बदगोई, ग़ीबत और झूठ व इलज़ाम लगाने इत्यादि से महफ़ूज़ रहती हैं। हमारे कान गुनाह की तरफ़ बुलानेवालों को सुनते हैं और हमें खाने-पीने, लेन-देन और दूसरे मामलों में हलाल व हराम का बहुत कम ख़याल होता है।

ऐसी हालत में अगर हम रोज़े से अच्छे नतीजे और बरकतों की उम्मीद रखते हैं तो यह हमारी नादानी है। रोज़ा तो हक़ीक़त में वही है जिसमें उसके आदाब का पूरा ख़याल रखा जाए। इसी से वह ज़िन्दगी हासिल हो सकती है जिसे तक़वा और शुक्रगुज़ारी की ज़िन्दगी कहा जा सके।

पुरानी आसमानी किताबों में भी ऐसे रोज़ों को बे-वज़न ठहराया गया है जिसका तक़वा, इख़लास और अच्छे अख़लाक से कोई ताल्लुक़ न हो। जैसे बाइबल में है—

> "सुनो तुम्हारे उपवास का फल यह होता है कि तुम उपवास में लड़ते और झगड़ते और दुष्टता से घूँसे मारते हो। जैसा उपवास तुम आजकल रखते हो उससे तुम्हारी प्रार्थना ऊपर नहीं सुनाई देगी जिस उपवास से मैं प्रसन्न होता हूँ अर्थात् जिसमें मनुष्य स्वयं को दीन करे क्या तुम इस प्रकार करते हो। फिर सिर को झाड़ के समान झुकाना अपने नीचे टाट बिछाना और राख फैलाने ही को उपवास और यहोवा (ख़ुदा) को प्रसन्न करने का दिन कहते हो।"
>
> (यशायाह 58:4-5)

दूसरी जगह कहा गया—

> "ख़बरदार ! अपने सच्चाई के काम आदमियों के सामने दिखाने के लिए न करो नहीं तो तुम्हारे बाप (रब) के पास जो आसमान पर है तुम्हारे लिए कोई बदला नहीं है।" (मत्ती 6:1)

एक और जगह है—

"और जब तुम रोज़ा रखो तो दिखावा करनेवालों की तरह अपनी सूरत उदास न बनाओ, क्योंकि वे अपना मुँह बिगाड़ते हैं, ताकि लोग उनको रोज़ेदार जानें, मैं तुमसे सच कहता हूँ कि वे अपना बदला पा चुके। बल्कि जब तू रोज़ा रखे तो अपने सिर में तेल डाल और मुँह धो ताकि आदमी नहीं बल्कि तेरा बाप (यानी रब) जो छिपा हुआ है, तुझे रोज़ादार जाने। इस सूरत में तेरा बाप, जो छिपकर देखता है, तुझे बदला देगा।" (मत्ती 6:16-18)

अगर रोज़े से हक़ीक़त में फ़ायदा उठाया जाए तो वह रोज़ेदार को इस मक़ाम पर खड़ा कर देता है कि उसे हर वक़्त अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास रहता है। उसके दिन-रात कभी बेख़ौफ़ी और बेपरवाई में नहीं बसर होते। शायद आपने कभी उन औरतों को देखा हो जो कुँएँ से पानी भरकर घरों में पहुँचाती हैं। ऐसा होता है कि पानी से भरा हुआ एक घड़ा सिर पर है और बग़ल में भी। पानी का घड़ा लिए हुए हैं, रास्ते में कोई जान-पहचान की औरत मिल गई तो रुककर उससे बातें भी कर लेती हैं। बातचीत के वक़्त देखा गया है कि घड़ा सिर पर है। हाथ उससे अलग किए हुए हैं, लेकिन क्या मजाल कि सिर से घड़ा गिर जाए। बज़ाहिर वे बातचीत में लगी होती हैं, लेकिन उनकी तवज्जोह घड़े की तरफ़ से हटने नहीं पाती। उन्हें अपने घड़े का पूरा ख़याल रहता है। यही वजह है कि घड़ा गिरने से महफ़ूज़ रहता है। रोज़े का भी कुछ ऐसा ही हाल है। इसमें भी आदमी को हर वक़्त इस बात का एहसास होना चाहिए कि वह रोज़े से है। वह अपने रोज़े की तरफ़ से ग़ाफ़िल न हो। रोज़े की हिफ़ाज़त को अपना फ़र्ज़ समझे। कामयाब है वह शख़्स जिस पर यह हक़ीक़त खुल गई कि उसकी ज़िम्मेदारी सिर्फ़ रोज़े के ज़ाहिरी आदाब व शर्तों की निगरानी तक महदूद नहीं है, बल्कि इससे भी आगे उसकी ज़िम्मेदारी है कि वह रोज़े के अस्ल मक़सद से ग़ाफ़िल न हो। आप जानते हैं कि रोज़े का जो अस्ल मक़सद है वह सिर्फ़ रोज़े के ज़माने में मतलूब नहीं है, बल्कि इसका ताल्लुक़ इनसान की पूरी ज़िन्दगी से है।

रोज़ा : एक फ़ितरी जिद्दोजुहद

इस्लामी इबादतों और ग़ैर-इस्लामी इबादतों में बहुत फ़र्क़ पाया जाता है। इस्लामी इबादतें फ़ितरी होने की वजह से बहुत ही मोतदिल और संतुलित हैं। इस्लाम में रोज़े का मक़सद जिस्म को तकलीफ़ देना नहीं, बल्कि इससे सिर्फ़ तज़किया और तरबियत और अल्लाह से क़रीब होना मतलूब है। क़ुरआन में है—

"अल्लाह तुम्हारे साथ आसानी चाहता है, वह तुम्हारे साथ सख़्ती नहीं चाहता।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-185)

यही वजह है कि इस्लाम में उन सख़्त मशक़्क़तों और तपस्याओं को हराम ठहराया गया है जो बहुत-सी क़ौमों ने अल्लाह से क़रीब होने के लिए इख़्तियार की थीं। पहले रोज़ा रात-दिन का होता था। रोज़े का वक़्त सुबह से शाम तक ठहरा दिया गया। क़ुरआन में कहा गया—

"और रातों को खाओ-पियो यहाँ तक कि तुमको रात के अंधेरे की धारी से सुबह के उजाले की धारी बिलकुल अलग नज़र आ जाए, तब यह सब काम छोड़कर रात तक रोज़ा पूरा करो।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-187)

प्यारे नबी (सल्ल॰) फ़रमाते हैं—

"जिसने बराबर रोज़ा रखा, उसने रोज़ा नहीं रखा।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

त्याग और तक़वा की राह अपनाते हुए जो लोग उम्रभर रोज़ा रखना चाहते थे, इस्लाम ने उससे रोक दिया और हिदायत की गई कि आदमी पर उसके नफ़्स का भी हक़ है और उस पर उसके मिलने-जुलनेवालों का भी हक़ है। इसलिए वह रोज़ा भी रखे और खाए-पिए भी। रातों को आराम भी करे और अल्लाह के सामने इबादत में खड़ा भी हो। लगातार रोज़े रखना या अपने जिस्म को बिलकुल आराम न पहुँचने देना इस्लामी तालीम के ख़िलाफ़ है।

जाहिलियत के ज़माने में मियाँ-बीवी रोज़े की मुद्दत में जिस्मानी ताल्लुक़ बनाने से परहेज़ करते थे। चूँकि यह बात फ़ितरत के ख़िलाफ़ थी, इसलिए ज़्यादातर लोगों से इस मामले में एहतियात नहीं हुई। क़ुरआन ने बताया कि मियाँ-बीवी के ताल्लुक़ से मनाही सिर्फ़ दिन की हद तक है, जबकि आदमी रोज़े से होता है। रात में मियाँ-बीवी का ताल्लुक़ जाइज़ है। फ़रमाया—

> "तुम्हारे लिए रोज़े की रात में अपनी बीवियों के पास जाना हलाल किया गया। वे तुम्हारे लिए लिबास हैं और तुम उनके लिए लिबास (की हैसियत रखते) हो। अल्लाह को मालूम हो गया कि तुम अपने आपसे ख़ियानत करते थे तो वह तुम पर मेहरबान हुआ और उसने तुम्हें माफ़ किया। अब उनसे मिलो-जुलो और अल्लाह ने तुम्हारे लिए जो कुछ लिखा है उसे हासिल करो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-187)

एक सफ़र में प्यारे नबी (सल्ल॰) ने एक शख़्स को देखा कि रोज़े से उसका हाल बुरा है। लोगों ने उस पर साया कर रखा है। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "यह कोई नेकी नहीं है कि सफ़र में (ऐसा) रोज़ा रखा जाए (जिसे आम क़ुव्वत बरदाश्त न कर सके)।" (हदीस बुख़ारी व मुस्लिम)

इसी तरह एक सहाबी (रज़ि॰) साल-भर रोज़े से रहे, जिसकी वजह से उनकी शक्ल व सूरत बदल गई। जब प्यारे नबी (सल्ल॰) को मालूम हुआ तो आप (सल्ल॰) ने उनसे फ़रमाया—

> "क्यों तुमने अपने-आपको अज़ाब दिया?" (यानी तुम्हें अपने आपको अज़ाब देने का कब अल्लाह ने हुक्म दिया।)
>
> (हदीस : अबू-दाऊद)

मुसाफ़िरों को इस बात की छूट हासिल है कि वे रोज़ा न रखें और सफ़र से वापसी के बाद उसे पूरा करें। इसी तरह ज़ईफ़ों (कमज़ोरों) और बीमारों को भी शरीअत ने छूट दी है।

जिस तरह रोज़े के ज़माने में दिन में खाने-पीने से रोका गया है, उसी तरह अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया है—

"सहरी खा लिया करो, क्योंकि सहरी खाने में बरकत है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

एक और हदीस में नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"दिन के गुज़ारने में सहरी के खाने से मदद लो, और रात में उठकर इबादत करने (यानी तहज्जुद) के लिए दिन के क़ैलूले (दोपहर में आराम के लिए थोड़ी देर लेट जाने) से मदद हासिल करो।"

मतलब यह कि सेहरी खाने से रोज़ा रखना तुम्हारे लिए आसान हो जाएगा। रोज़े से अल्लाह की इबादत अैर दूसरे ज़रूरी काम तुम आसानी के साथ अंजाम दे सकोगे। यह तुम्हारे लिए बरकत की बात होगी।

इसी तरह प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जब तक लोग इफ़तार करने में जल्दी करेंगे, ख़ैर की हालत में रहेंगे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

ऊपर की तफ़सील से अच्छी तरह से अन्दाज़ा होता है कि रोज़ा इनसान के तज़किए और तरबियत के लिए है। इससे मक़सद अपने-आपको अज़ाब देना और तकलीफ़ देना हरगिज़ नहीं है। तज़किया-ए-नफ़्स के लिए ज़ब्ते-नफ़्स और मुजाहिदा व रियाज़त (तपस्या) की ज़रूरत पेश आती है। रोज़ा एक सन्तुलित और फ़ितरी रियाज़त (तपस्या) है।

रोज़ा और तज़किया-ए-नफ़्स

रमज़ान का महीना बड़ा मुबारक महीना है। यही वह महीना है जिसमें क़ुरआन उतरना शुरू हुआ, वह क़ुरआन जो तमाम इनसानों के लिए हिदायत की किताब है। इसकी रौशनी में इनसान वह राह पा सकता है जो सीधी और सही राह है। जिसको अपनाकर इनसान अपनी ज़िन्दगी को कामयाब बना सकता है और हर तरह की गुमराहियों से, चाहे वह फ़िक्र व नज़र की गुमराही हो या रवैये और अमल की गुमराही, इससे महफ़ूज़ और सुरक्षित रह सकता है। क़ुरआन बताता है कि बहुत-से नज़रियात और ख़यालात में सही नज़रियात और ख़यालात क्या हैं। बहुत-से जज़बात व एहसासात में सही और बेशक़ीमत जज़बात क्या हैं, जो हमारे दिलों में पाए जाने चाहिएँ और बहुत-से रवैयों में इनसान के लिए सही और फितरी रवैया क्या हो सकता है? मतलब यह कि क़ुरआन तमाम इनसानों के लिए एक मुकम्मल रहनुमा क़िताब है, जो इल्म, बसीरत (विवेक), हिकमत (तत्त्वदर्शिता) और पाकीज़ा ज़िन्दगी की दावत देता है। वह फ़िक्री और अमली बिखराव और गन्दगी से बचाता और उस फ़िक्रो-अमल के निज़ाम से बाख़बर करता है जिससे बढ़कर सही और फ़ितरी निज़ामे-ज़िन्दगी का तसव्वुर नहीं किया जा सकता। क़ुरआन जिस फ़िक्रो-अमल की तालीम देता है वह हर तरह की कमियों से पाक एक सन्तुलित और मुकम्मल निज़ामे-फ़िक्रो-अमल है।

क़ुरआन ने इनसान की ज़िन्दगी में जिस चीज़ को सबसे ज़्यादा अहमियत दी है वह उसकी शख़सियत (Personality) है। शख़सियत की तामीर (व्यक्तित्त्व का निर्माण) उसकी सारी तालीमात का हासिल है। इसी शख़सियत और किरदार की तामीर को क़ुरआन नफ़्स का तज़किया कहता है। यही तज़किया ज़िन्दगी का मक़सद और क़ुरआनी तालीमात का हासिल है। इसी लिए इसको हासिल करने को क़ुरआन फ़लाह और कामयाबी कहता है। अतएव क़ुरआन में है—

"कामयाब हो गया वह शख़्स जिसने अपना तज़किया कर लिया।"
(क़ुरआन, सूरा-87 आला, आयत-14)

एक दूसरी जगह फ़रमाया–

"उनके लिए सदाबहार बाग़ हैं जिनके नीचे नहरें बहती होंगी, उनमें वे मुस्तक़िल रहेंगे। यह बदला हैं उसका जिसने अपना तज़किया किया।" (क़ुरआन, सूरा-20 ताहा, आयत-76)

एक और जगह फ़रमाया गया–

"कामयाब हो गया जिसने अपना तज़किया किया और नामुराद हुआ जिसनें अपने नफ़्स को दबा दिया।"

(क़ुरआन, सूरा-91 शम्स, आयत-9,10)

इससे मालूम हुआ कि क़ुरआन की तालीमात का अस्ल मक़सद तज़किया-ए-नफ़्स के सिवा कुछ और नहीं है। यह मक़सद कितना हसीन और ख़ुशगवार है, इसको अच्छी रुचि रखनेवाला हर शख़्स महसूस कर सकता है। तज़किया-ए-नफ़्स का मतलब यह है कि हमारी शख़सियत में तरक़्क़ी की जो सम्भावनाएँ रखी गई हैं वे दबकर न रह जाएँ, बल्कि वे ज़ाहिर हों। इसको एक मिसाल से समझा जा सकता है। गुलाब के एक छोटे से पौधे में ये सम्भावनाएँ पाई जाती हैं कि वह विकसित होकर हरा-भरा हो, उसमें डालियाँ निकलें, कलियाँ आएँ और एक दिन उसकी डालियों पर गुलाब के महकते हुए ख़ूबसूरत फूल खिल जाएँ। अगर ऐसा होता है तो समझिए कि उस पौधे के अन्दर जो सम्भावनाएँ पाई जाती थीं वे खुलकर सामने आ गईं। लेकिन अगर गुलाब का वह पौधा फूल खिलने से पहले सूख गया, या किसी ने उस पौधे को कुचल दिया या उसे उखाड़कर फेंक दिया तो हम यही कहेंगे कि वह पौधा अपने वुजूद के मक़सद तक न पहुँच सका, बल्कि उससे पहले ही ख़त्म और बरबाद हो गया।

ठीक यही मिसाल इनसान की है। कोई भी इनसान सिर्फ़ पैदा हो जाने से ही कामयाब नहीं हो जाता और न वह अपने उस मक़सद को हासिल कर सकता है जिसके लिए उसे ज़िन्दगी दी गई है। इसके लिए ज़रूरी है कि उसके अन्दर तरक़्क़ी और परवान चढ़ने की जो सम्भावनाएँ रखी गई हैं वे बेकार होकर न रह जाएँ, बल्कि एक बेहतरीन और बेऐब शख़सियत की

शक्ल में उनका इज़हार हो। ऐसी मतलूब शख़सियत की तामीर और तकमील बेहतरीन अफ़कारो-नज़रियात, बेहतरीन जज़बात व अख़लाक़ और बेहतरीन आमाल व किरदार के ज़रिए से होती है। अब अगर इनमें से किसी पहलू से इसमें कोई कमी और ख़राबी पाई जाती है तो इसका मतलब यही होगा कि इनसान होते हुए आदमी ज़िन्दगी के मक़सद को पूरा करने से महरूम रह गया।

ज़िन्दगी के मक़सद को पूरा करने में जो कमी रह जाती है उसकी कई वजहें होती हैं। कभी इसकी वजह यह होती है कि वह बेपरवा होकर ज़िन्दगी गुज़ारता है। अपनी ज़िम्मेदारी का सिरे से वह कोई एहसास ही नहीं रखता। इसके बारे में यही कहा जाएगा कि वह गुमराही में पड़ा हुआ है।

कभी ऐसा होता है कि इनसान भौतिक फ़ायदों और जिस्मानी लज़्ज़तों का ऐसा आशिक़ होता है कि वह बस जिस्म के आसपास रहकर ज़िन्दगी गुज़ारता है। वह नहीं जानता कि जिस्म के अलावा भी कुछ है और भौतिक ज़रूरतों के सिवा भी उसकी कुछ ज़रूरतें हो सकती हैं, जो भौतिकता से कहीं बढ़कर और बेशक़ीमत हो सकती हैं। ऐसा शख़्स दुनियावी फ़ायदों और दुनियावी ख़ुशियों ही को सब कुछ समझ बैठता है। इसके सिवा वह कुछ और सोच नहीं सकता और न उसे किसी और चीज़ से दिलचस्पी हो सकती है।

कभी ऐसा होता है कि उसके सामने नबियों और पैग़म्बरों की तालीमात आती हैं तो वह अपनी निजी दिलचस्पियों और सतही और ऊपरी क़िस्म के ख़यालात के मुक़ाबले में उन्हें कोई वज़न नहीं देता और बहुत-ही ढिटाई के साथ वह उन तालीमाल को झुठलाने पर आमादा हो जाता है। सच्ची हिदायतों और अद्ल व इनसाफ़ और हक़पसन्दी के बजाय वह नाइनसाफ़ी का रवैया अपनाता है। और यह रवैया अपनाते हुए न उसे अपने अख़लाक़ व किरदार की फ़िक्र होती है और न इसका कोई ख़याल होता है कि उसका कोई ख़ुदा है जिसके सामने वह जवाबदेह है और एक रोज़ उससे इसकी पूछ-गछ होगी।

कभी आदमी किसी क़ौमी या गरोही तास्सुब में पड़ जाता है और वह उस तास्सुब की क़ैद से निकल नहीं पाता और हक़ से महरूम होकर रह जाता है। कभी बेजा अहं और घमण्ड उसकी राह में रुकावट बन जाता है और वह अपनी ग़लत रविश पर मज़बूती के साथ क़ायम रहता है और किसी हाल में भी इसके लिए तैयार नहीं होता कि अपने रवैये पर फिर से नज़र डाले। इस तरह इनसान आँख रखते हुए अंधा बना रहता है, कान रखते हुए बहरा और दिल रखते हुए पत्थर की तरह बेहिस साबित होता है। इन्हीं वजहों से हक़ से हटे हुए लोगों को क़ुरआन में कहीं ज़ालिम ठहराया गया है, कहीं मुजरिम और सरकश कहा गया है, कहीं नाशुक्रे और एहसान भुला देनेवाले ठहराया गया है और कहीं जानवरों में उनकी गिनती की गई है, बल्कि जानवरों से भी बदतर ठहराया गया है और कहीं उन्हें बेहिस और मुर्दा अंधेरों का पुजारी कहा गया है।

जिन ख़राबियों और रुकावटों का हमने ज़िक्र किया, उनमें कुछ तो नफ़सियाती हैं और कुछ का ताल्लुक़ अज्ञान, भौतिकता और ज़ाहिर-परस्ती से है। ज़ाहिर-परस्ती और भौतिकता के ग़लबे की वजह से आदमी न सिर्फ़ यह कि अपनी ज़िम्मेदारियों से बचता है, बल्कि वह अपनी ज़िन्दगी के बुनियादी मक़सद यानी अपनी शख़सियत की तामीर को बिलकुल भूलकर हक़ीक़त में ख़ुदकुशी का जुर्म करता है।

इस दुनिया में होशमन्दी के साथ रहने के मुक़ाबले में इनसान के ग़ाफ़िल होने की सम्भावनाएँ ज़्यादा पाई जाती हैं। इसलिए कि यह दुनिया फ़ितनों से भरी हुई है और इस ज़िन्दगी में इनसान को बहुत-से चेलैंजों का सामना करना पड़ता है, जिनके मुक़ाबले में आमतौर से वह मात खा जाता है। ऐसी सूरत में ज़रूरी था कि इनसान की तालीम व तरबियत की तरफ़ ख़ास तौर से तवज्जोह दी जाए। चुनांचे हमारी तरबियत के लिए रमज़ान का पूरा एक महीना ख़ास कर दिया गया और इस महीने में रोज़ा रखना फ़र्ज़ ठहराया गया। यह रोज़ा कई पहलुओं से तज़किया-ए-नफ़्स या किरदार को बनाने में ग़ैर-मामूली रोल (भूमिका) अदा करता है।

आप जानते हैं कि सब्र और इस्तिक़ामत और नफ़्स को कंट्रोल किए बग़ैर किसी शख़सियत और किरदार का तसव्वुर नहीं किया जा सकता। इसी लिए क़ुरआन सब्र और सत्य पर जमे रहने को बुनियादी अहमियत देते हुए कहता है—

"यह चीज़ सिर्फ़ उन लोगों को हासिल होती है जो सब्र से काम लेते हैं और यह चीज़ सिर्फ़ उनको हासिल होती है जो बड़े नसीबेवाले होते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-37 हाम्मीम सजदा, आयत-35)

सब्र की इसी बुनियादी अहमियत को सामने रखते हुए आख़िरत की कामयाबी और जन्नत जैसी नेमत उनके हिस्से में दिखाई गई है जिनके अन्दर सब्र की ख़ूबी पाई जाती है। चुनांचे क़ुरआन में है—

"अल्लाह ने उन्हें इस दिन की बुराई से बचा लिया और उन्हें ताज़गी व दिलकशी और सुरूर प्रदान किया और जो सब्र उन्होंने किया उसके बदले में उन्हें जन्नत और रेशम का लिबास दिया।"

(क़ुरआन, सूरा-76 दहर, आयत-11,12)

सब्र और जमाव की तरह सीरत व किरदार को बनाने के लिए यह भी ज़रूरी है कि आदमी सच्चाई की ख़ूबी को भी अपनाए, उसमें कोई खोट न हो और उस पर भरोसा किया जा सके। सच्चाई के बग़ैर आदमी आवाज़ की कमज़ोरियों और खोखलेपन से छुटकारा नहीं पा सकता। इसी लिए क़ुरआन की निगाह में सब्र की तरह सच्चाई को भी ज़िन्दगी में बुनियादी अहमियत हासिल है। कहा गया—

"ताकि (उस दिन) अल्लाह सच्चों को उनकी सच्चाई का बदला दे।" (क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-24)

एक जगह फ़रमाया—

"अल्लाह कहेगा, यह वह दिन है कि सच्चों को उनकी सच्चाई फ़ायदा देगी। उनके लिए ऐसे बाग़ हैं जिनके नीचे नहरें बह रही होंगी, उनमें वे हमेशा रहेंगे। अल्लाह उनसे राज़ी हुआ और वे उससे राज़ी हुए। यही सबसे बड़ी कामयाबी है।"

(क़ुरआन, सूरा-5 मायदा, आयत-119)

अब आप ग़ौर करें कि रोज़ा किस तरह आदमी के अन्दर उन सारी ख़ूबियों को पैदा करता है और उन्हें क़ुव्वत बख़्शता है जो सीरत और किरदार का लाज़िमी हिस्सा हैं, जिनके बग़ैर हम नफ़्स की बुलन्दी और उसकी पाकीज़गी का तसव्वुर नहीं कर सकते।

रमज़ान में रोज़ा रखकर मोमिन अपने इस यक़ीन का इज़हार करता और इसे क़ुव्वत बख़्शता है कि उसका अल्लाह पर ईमान है। वह उसके किसी हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी नहीं कर सकता, क्योंकि अल्लाह की नाफ़रमानी उसे क़ियामत के दिन कहीं का न रखेगी। फिर तो अल्लाह का ग़ज़ब ही उसके हिस्से में आएगा। रमज़ान में रोज़ा रखकर और भूख-प्यास बरदाश्त करके वह अपने अन्दर वह ख़ूबी पैदा करता है जिसे सब्र कहते हैं। प्यारे नबी (सल्ल०) ने भी रमज़ान को सब्र का महीना कहा है। इस महीने की रातों को (नमाज़ में) खड़े रहने का एहतिमाम किया जाता है। इससे एक तरफ़ तो अल्लाह से रिश्ता मज़बूत होता है, दूसरी तरफ़ इससे इनसान के अन्दर मशक़्क़तों को बरदाश्त करने की क़ुव्वत पैदा होती है। सब्र और सच्चाई में गहरा रब्त और ताल्लुक़ है। सब्र के बग़ैर सच्चाई पर क़ायम रहना मुमकिन नहीं। चूँकि रोज़े का ताल्लुक़ अमल से है, इसलिए उसके ज़रिए से आदमी के अन्दर जो ख़ूबी उभरेगी वह भरोसेमन्द होगी। रोज़ेदार लोगों से छिपकर खा-पी नहीं सकता। वह जानता है कि उसका रोज़ा अल्लाह के लिए है जिससे वह अपनी चोरी नहीं छिपा सकता। इस तरह रोज़ा आदमी को हर तरह के फ़रेब और धोखे से बचाकर उसे एक सच्चा बन्दा बनाता है।

फिर यह रोज़ा आदमी के छिपे हुए शुऊर को बेदार करता और उसके एहसासात को लताफ़त और कोमलता प्रदान करता है, जिसकी वजह से उसके अन्दर फ़ितरी तौर पर अपने भाइयों से ताल्लुक़ पैदा होता है जो उसके साथ रोज़ा रखते और अल्लाह की तरफ़ मुतवज्जेह होते हैं। इनमें मिस्कीन और ज़रूरतमन्द भी होते हैं। इनके लिए दिल में हमदर्दी का जज़्बा उभरना एक फ़ितरी बात है, आदमी को उनकी मदद करने में ख़ुशी होती है।

क़ुरआन के मुताबिक़ रोज़े से आदमी के अन्दर तक़वा की ख़ूबी पैदा होती है। उसके अन्दर से बेपरवाई जाती रहती है। उसे होशमन्दी और

ज़िम्मेदारी के एहसास के साथ जीना आ जाता है। क़ुरआन में साफ़ शब्दों में कहा गया है–

"ऐ ईमान लानेवालो! तुम पर रोज़े फ़र्ज़ किए गए, जैसे तुमसे पहले लोगों पर फ़र्ज़ किए गए ताकि तुम तक़वा हासिल करो।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-183)

यानी तुम पर रोज़े इसलिए फ़र्ज़ किए गए ताकि ग़फ़लत दूर हो सके। तुम्हारे अन्दर होशमन्दी की ख़ूबी पैदा हो जाए। तुम्हारी रुचि और ज़ौक़ इतना साफ़-सुथरा और लतीफ़ (कोमल) हो जाए कि तुम्हें यह समझने में देर न लगे कि क्या सही है और क्या ग़लत? किस रवैये के इख़्तियार करने में असल फ़ायदा है और कौन-सा रवैया अख़लाक़ी मौत है? इसी लिए प्यारे नबी सल्ल फ़रमाते हैं–

"जो शख़्स रमज़ान के रोज़े ईमान और एहतिसाब के साथ रखे उसके सब पिछले गुनाह माफ़ कर दिए जाते हैं।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

रोज़े में अल्लाह और उससे मुलाक़ात का अक़ीदा ताज़ा रहे और उससे अस्ल में अल्लाह की रज़ा मतलूब हो, यही ईमान और एहतिसाब है। यह ईमान और एहतिसाब हक़ीक़त में रोज़े ही का एक हिस्सा है। इसकी वजह से रोज़ा शुऊरी और हक़ीक़ी हो जाता है, सिर्फ़ रस्मी नहीं रहता। ऐसे रोज़े में यह ख़ूबी होती है कि आदमी गुनाहों से पाक हो जाए। बुराई के असरात और गन्दगी उससे बिलकुल दूर हो जाए। फिर रोज़ा सिर्फ़ गुनाहों को ही नहीं मिटाता, बल्कि उसके अन्दर यह ख़ूबी भी पाई जाती है कि वह हर तरह के गुनाह और ज़ुल्म और नाफ़रमानी के कामों से रोक दे, इसी लिए प्यारे नबी (सल्ल॰) फ़रमाते हैं–

"जिसने झूट बोलना और उस पर अमल करना न छोड़ा, तो अल्लाह को उसकी कुछ ज़रूरत नहीं कि वह (रोज़ा रखकर) अपना खाना-पीना छोड़ दे।" (हदीस : बुख़ारी)

ख़ुद क़ुरआन में रोज़े के आदाब व ज़ाब्ते बयान करते हुए फ़रमाया गया है—

"और अपने माल ग़लत तरीक़े से न खाओ और न उन्हें हाकिमों के आगे इस ग़रज़ से ले जाओ कि तुम्हें दूसरों के माल का कोई हिस्सा जान-बूझकर अन्यायपूर्ण तरीक़े से खाने का मौक़ा मिल जाएगा।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-188)

रोज़े से, जैसा कि कहा गया, इनसान की ऐसी तरबियत और प्रशिक्षण मक़सूद है कि वह मन की इच्छाओं और जिस्मानी ज़रूरतों का ग़ुलाम बनकर न रहे। इनसान की भौतिक ज़रूरतें भी होती हैं, इससे इनकार नहीं, लेकिन ये ज़रूरतें इसलिए नहीं हैं कि इनसान इन ही को हासिल करने को ज़िन्दगी का अस्ल मक़सद ठहरा ले और फिर जाइज़ और नाजाइज़ और हलाल व हराम का कोई अन्तर बाक़ी न रहे और उस पर ऐसी दीवानगी छा जाए कि वह न्याय और इनसाफ़, भाइचारा और हमदर्दी, ग़मख़ारी और मुरव्वत सबको ताक़ पर रख दे और एक ख़ुदग़रज़ हैवान बनकर ज़िन्दगी गुज़ारने लगे।

इनसान जब अल्लाह के हुक्म से रोज़े रखता है और दिन में खाना-पीना छोड़ देता है और सम्भोग आदि से रुका रहता है तो हक़ीक़त में वह अपने को इसके लिए तैयार करता है कि वह अल्लाह के हर हुक्म पर अमल करेगा और ज़िन्दगी के हर मैदान में अल्लाह का फ़रमाँबरदार और वफ़ादार बन्दा बनकर रहेगा। यह इरादा और हौसला ऐसा है कि इसके साथ सरकशी और नाफ़रमानी के रुझानात पैदा नहीं हो सकते। ऐसा शख़्स यह हरगिज़ पसन्द नहीं कर सकता कि वह अल्लाह की निगाह में मुजरिम क़रार पाए या उसके यहाँ ज़ालिम और बिगाड़ पैदा करनेवाला ठहराया जाए या फ़ैसले के दिन झूठा या मुनाफ़िक़ साबित हो और उसकी गिनती उन लोगों में हो जो जिहालत के अंधेरों में गुम होते हैं, जिनको न अपनी क़द्रो-क़ीमत का कोई पता होता है, न वे अपने बुरे अंजाम को जानते होते हैं।

एक महीने के लगातार रोज़े से यह हक़ीक़त खुल जाती है कि दुनिया की भौतिक नेमतों से बढ़कर भी कोई नेमत है जिसे कभी नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता और वह है अपने रब की याद और उसको ख़ुश करने की तलब, जिसका नाम लेकर हम रोज़ा रखते हैं और जिसका नाम लेकर हम शाम को रोज़ा खोलते हैं। यह चीज़ रोज़े को एक बेहतरीन इबादत का दर्जा दे देती है। ऐसी इबादत जिसके ज़रिए से हमारे नफ़्स का तज़किया होता है। दुनिया की सारी नेमतों में सबसे बड़ी नेमत ज़िन्दगी और ज़िन्दगी का शुऊर है, लेकिन यह ज़िन्दगी बातिल होकर रह जाती है जब हम इसकी तकमील की ज़िम्मेदारियों से ग़फ़लत बरतते हैं। ज़िन्दगी की अस्ल कमाई बुलन्द किरदार है। यही बुलन्द किरदार हासिल करने को तज़किया-ए-नफ़्स कहते हैं। अगर हमारे रोज़े से नफ़्स का तज़किया न हो सके और रोज़ा रखने के बावजूद हम अच्छे अख़लाक़ और किरदारवाले न बन सकें तो इसे इसके सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता कि हमारा रोज़ा हक़ीक़ी रूह से ख़ाली सिर्फ़ एक रस्मी रोज़ा है। जरूरत है कि हमारा रोज़ा सिर्फ़ रस्मी न हो, बल्कि हक़ीक़ी हो और उससे वह अस्ल मक़सद हासिल हो जिसके लिए अल्लाह ने उसे हम पर फ़र्ज़ किया है।

रमज़ान के महीने की अहमियत

व्यक्तिगत और सामूहिक ज़िन्दगी में

इनसान की ज़िन्दगी अपने अन्दर बड़ी सम्भावनाएँ रखती है। शर्त यह है कि इनसे फ़ायदा उठाया जाए और उनको अमल में लाने का मौक़ा दिया जाए। इसकी मिसाल बिलकुल ऐसी है जैसे एक बीज के अन्दर इस बात की सम्भावनाएँ रखी गई हैं कि वह एक पेड़ बन सके। लेकिन अगर कोई उस बीज को गर्म तवे पर भून दे तो फिर उन सारी ही सम्भावनाओं का ख़ात्मा हो जाता है जो उस बीज के अन्दर मौजूद होती हैं। अब उससे पेड़ बनने की उम्मीद नहीं रखी जा सकती और हम उससे फल-फूल और किसी घने साए की उम्मीद नहीं कर सकते हैं। ठीक यही हाल इनसान की ज़िन्दगी का है।

इनसान की यह एक ज़रूरत है कि उसकी फ़ितरी सलाहियतों (नैसर्गिक योग्यताओं) और क़ुव्वतों को उभरने और विकसित होने के लिए तालीम व तरबियत का एहतिमाम किया जाए। आम जानदारों के बरख़िलाफ़ इनसान का अपना एक अख़लाक़ी वुजूद है। इस अख़लाक़ी वुजूद के कुछ लाज़िमी तक़ाज़े हैं। इन तक़ाज़ों को पूरा किए बग़ैर इनसान की ज़िन्दगी की तकमील और उसकी कामयाबी का हम तसव्वुर नहीं कर सकते। इस दुनिया में आम तौर पर ज़हनों पर भौतिकता और दुनिया के फ़ायदों का ऐसा ग़लबा हो जाता है कि आदमी के लिए बहुत मुश्किल होता है कि वह ज़िन्दगी को उसकी फ़ितरी पाकीज़गी में देख सके और ज़िन्दगी की अहम क़द्रों और बेशक़ीमत हक़ीक़तों को समझ सके। ऐसी हालत में इनसान की तरबियत और तज़किए की ज़रूरत बहुत बढ़ जाती है।

रमज़ान के महीने की अहमियत का अन्दाज़ा आप इससे कर सकते हैं कि यह पूरा महीना हमारी फ़िक्री, रूहानी और अमली तरबियत के लिए ख़ास कर दिया गया है। फिर तरबियत के लिए उन तमाम लाज़िमी चीज़ों का भी ख़याल रखा गया है जो हमारी रूह के परवान चढ़ने और हमारे

किरदार की तामीर में मददगार होते हैं। रमज़ान में हमारी जिस तरबियत का एहतिमाम किया गया है वह कोई आधी-अधूरी तरबियत हरगिज़ नहीं है। इस तरबियत से मतलूब यह है कि इनसान न सिर्फ़ यह कि अपनी व्यक्तिगत ज़िन्दगी में नेक बन सके, बल्कि उसे इज्तिमाइयत का भी शुऊर हो और वह इज्तिमाई तक़ाज़ों को भी पूरा करे। क्योंकि उसके बग़ैर किसी ऊँचे किरदार या अच्छे अख़लाक़ का तसव्वुर मुमकिन नहीं। अल्लाह के मतलूब इनसान वही हो सकते हैं जो अपनी व्यक्तिगत ज़िन्दगी में भी बेहतरीन इनसान साबित हो सकें और जो इज्तिमाई ज़िन्दगी से भी न भागें, बल्कि इस पहलू से भी अपनी ज़िम्मेदारियों का पूरा एहसास रखते हों। क़ुरआन में है—

> "रमज़ान वह महीना है जिसमें क़ुरआन उतारा गया जो लोगों के लिए सरासर ऐसी वाज़ेह तालीमात पर आधारित है जो सीधा रास्ता दिखानेवाली और हिदायत है और हक़ व बातिल का फ़र्क़ खोलकर रख देनेवाली हैं। इसलिए तुम में से जो कोई इस महीने में मौजूद हो उसे चाहिए कि उसके रोज़े रखे।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-185)

हमारी तरबियत के लिए रमज़ान के महीने को चुना गया और इसका रिश्ता साफ़ और खुले तौर पर क़ुरआन से क़ायम किया गया है। क़ुरआन के उतरने का मक़सद रमज़ान के रोज़ों के मक़सद से अलग नहीं है। क़ुरआन इनसानी ज़िन्दगी के लिए हिदायत बनकर उतरा हुआ है और इसलिए उतरा हुआ है कि लोग दलीलों की रौशनी में हक़ को पा लें और उनके अन्दर हक़ और बातिल में फ़र्क़ करने की पूरी सलाहियत पैदा हो जाए। वे कभी भी धोखा खाकर बातिल को हक़ और हक़ को बातिल समझने की ग़लती न करें। उनके क़दम किसी हाल में भी ग़लत राहों पर न पड़ें। वे इतने बुलन्द हो जाएँ कि पस्तियाँ उन्हें अपनी तरफ़ झुकाने में नाकाम रह जाएँ। वे हक़ की रौशनी की ऐसी क़द्र करनेवाले हों कि अन्धेरे कभी उन्हें अपने अन्दर गुम न कर सकें।

यह एक हक़ीक़त है कि रोज़े के ज़रिए से रमज़ान के महीने को ख़ास इम्तियाज़ हासिल है। यह रोज़ा एक पाकीज़ा इबादत और हमारी अख़लाक़ी

व रूहानी तरबियत का एक बेहतरीन ज़रिआ भी है। फिर हम जानते हैं कि ज़ब्ते-नफ़्स, तक़वा और अपने फ़र्ज़ को पहचाने बग़ैर बेहतरीन तरबियत एक बेमानी शब्द बनकर रह जाता है। चुनांचे क़ुरआन में साफ़ शब्दों में कहा गया है कि रोज़े का अस्ल मक़सद तक़वा हासिल करना है—

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो ! तुम पर रोज़े फ़र्ज़ किए गए जैसा कि तुमसे पहले के लोगों पर फ़र्ज़ किए गए थे, ताकि तुम तक़वा हासिल कर सको।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-183)

तक़वा का मतलब होता है ज़िम्मेदारी का एहसास होना, ज़ब्ते-नफ़्स, ख़ुदातरसी, बड़ी हक़ीक़त के सामने छोटी चीज़ों से नज़र फेर लेना। ख़ाहिशों का ग़ुलाम इनसान न तो अल्लाह की अज़मत, बड़ाई और उसकी बुज़ुर्गी व पाकीज़गी का सही एहसास कर सकता है, न ज़िन्दगी की ऊँची क़द्रों और ऊँची हक़ीक़तों को महसूस कर सकता है और न इसके लिए यह मुम्किन होता है कि वह ख़ुदा की राह पर चल सके।

रोज़ा इस हक़ीक़त का अमली इज़हार है कि खाने-पीने और जिंसी ख़ाहिशों (यौन-इच्छाओं) की तकमील ही पूरी ज़िन्दगी नहीं है, बल्कि इनके अलावा कुछ बड़ी हक़ीक़तें भी हैं जो ज़िन्दगी का अस्ल सरमाया हैं। रोज़ा ज़ाहिर में तो यह है कि आदमी भोर से लेकर सूरज डूबने तक खाने-पीने और सम्भोग आदि से रुका रहे, लेकिन अपनी रूह और स्प्रिट के लिहाज़ से रोज़ा हक़ीक़त में इस चीज़ का नाम है कि आदमी को अपनी इच्छाओं पर क़ाबू हो और उसे तक़वा की ज़िन्दगी हासिल हो। उसकी निगाहें पाक हों और उसकी ज़िन्दगी पाकीज़गी और ख़ुदातरसी का दर्पण हो। रोज़े का मतलब यह है कि रोज़े की हालत में तो वह खाने-पीने और जिंसी ख़ाहिशों को पूरा करने से रुका रहे, लेकिन गुनाहों के करने और नापसन्दीदा कामों को हमेशा के लिए छोड़ दे।

रोज़ा अपने-आपको अल्लाह के लिए फ़ारिग़ कर लेने और मुकम्मल तौर पर उसकी तरफ़ मुतवज्जेह होने का नाम है। इस पहलू से रोज़े और ऐतिकाफ़ के बीच गहरा रिश्ता पाया जाता है। यही वजह है कि ऐतिकाफ़

के साथ रोज़ा रखना ज़रूरी ठहराया गया है और रमज़ान के आख़िरी दस दिनों में ऐतिकाफ़ करना बड़े सवाब का काम ठहराया गया है।

रमज़ान की अहमियत जैसा कि हम बयान कर चुके हैं, व्यक्तिगत और इज्तिमाई दोनों ही पहलुओं से है। प्यारे नबी (सल्ल॰) के फ़रमान से तो यह हक़ीक़त बहुत अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है। हम यहाँ इस सिलसिले में प्यारे नबी (सल्ल॰) की कुछ हदीसें बयान करना चाहेंगे—

प्यारे नबी (सल्ल॰) फ़रमाते हैं—

"यह सब्र और जमाव का महीना है।"

जो लोग रमज़ान की बरकतों से पूरा फ़ायदा उठाते और रमज़ान के महीने के आदाब का पूरा लिहाज़ रखते हैं उनके लिए यह पूरा महीना ख़ैर और बरकत से भरा होता है। इसी लिए हदीस में है—

"यह (रमज़ान) वह महीना है जिसका शुरू का हिस्सा रहमत, बीच का हिस्सा मग़फ़िरत (मोक्ष-प्राप्ति) और आख़िरी हिस्सा (जहन्नम की) आग से आज़ादी है।" (हदीस : बैहक़ी)

ये हदीसें इस बात का अन्दाज़ा करने के लिए काफ़ी हैं कि हमारी व्यक्तिगत ज़िन्दगी के लिए रमज़ान की क्या अहमियत है।

रमज़ान के महीने में इज्तिमाइयत की पूरी शान पाई जाती है। सभी ईमानवाले एक साथ रोज़ा रखते हैं और ज़्यादा-से-ज़्यादा इबादत और नेक कामों में मशग़ूल होते हैं। इससे समाज में नेकी और रूहानियत की एक फ़िज़ा पैदा हो जाती है, जिसका दिलों पर गहरा असर पड़ता है।

आम हालात में आदमी को एक-दूसरे की तकलीफ़ और भूख का एहसास कम ही होता है, लेकिन रोज़े में भूख-प्यास का अमली तजरिबा आदमी के अन्दर यह एहसास पैदा करता है कि वह मुहताजों और ज़रूरतमन्दों को न भूले, बल्कि उनके साथ हमदर्दी से पेश आए और उनकी परेशानियों को दूर करने की कोशिश करे। ख़ुद प्यारे नबी (सल्ल॰) इस महीने में लोगों पर बहुत ज़्यादा ख़र्च किया करते थे।

प्यारे नबी (सल्ल॰) फ़रमाते हैं कि यह महीना हमदर्दी और एक-दूसरे की मदद करने का महीना है। (हदीस : बैहक़ी) यानी रोज़े में अपने दूसरे भाइयों के लिए हमदर्दी का जज़्बा शिद्दत के साथ उभरना चाहिए।

प्यारे नबी (सल्ल॰) फ़रमाते हैं—

"जो कोई रोज़ेदार को पेट भरकर खाना खिलाए, अल्लाह उसे मेरे हौज़ से इस तरह पिलाएगा कि उसको प्यास ही न लगेगी, यहाँ तक कि वह जन्नत में दाख़िल हो जाएगा।" (हदीस : बैहक़ी)

प्यारे नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है—

"जो शख़्स रमज़ान में अपने ग़ुलाम (सेवक) के काम में कमी कर देगा अल्लाह उसे (जहन्नम की) आग से छुटकारा दे देगा।"

(हदीस : इब्ने-ख़ुज़ेमा)

आदमी अगर रमज़ान के महीने से हक़ीक़त में फ़ायदा उठाए तो वह उसे उस मक़ाम पर खड़ा कर देगा कि उसे हर वक़्त अपनी ज़िम्मेदारी का एहसास होगा। फिर तो उसके रात-दिन ग़फ़लत और बेपरवाई में बसर नहीं हो सकते। वह अल्लाह की निकटता हासिल करने में कामयाब होगा और ख़ुदा के बन्दों यानी इनसानों के हक़ अदा करनेवाला और उनका भला चाहनेवाला उससे बढ़कर कोई दूसरा नहीं हो सकता।

ईदुल-फ़ित्र किस लिए?

त्योहार का अस्ल ताल्लुक़ इनसान के जज़बात, ख़ास तौर से उसके ख़ुशी के जज़्बे से होता है। यह जज़्बा जितना ज़्यादा गहरा और अहमियत रखता होगा, त्योहार की भी क़द्रो-क़ीमत उतनी ही ज़्यादा होगी। ख़ुशी के बग़ैर कोई भी समाज ज़िन्दा नहीं रह सकता। इसी लिए त्योहार और समाजी ज़िन्दगी में चोली-दामन का साथ माना जाता है।

एक ख़ुशी तो वह है जो सिर्फ़ किसी ख़ास शख़्स से ताल्लुक़ रखती है, दूसरे लोगों से उसका ताल्लुक़ नहीं होता। इसके बरख़िलाफ़ एक ख़ुशी वह हो सकती है जो ज़्यादा-से-ज़्यादा लोगों के बीच पाई जाती हो। त्योहार का रिश्ता इसी दूसरी तरह की ख़ुशी से है। इसी को पाएदार और मज़बूत शक्ल देने के लिए त्योहर वुजूद में आया है। इसलिए त्योहार में साझा जज़बात और साझा ख़ुशियों का इज़हार किया जाता है। सब मिलकर ख़ुशी मनाते हैं। यह चीज़ लोगों के अन्दर इज्तिमाई रूह पैदा करती है और त्योहार इसे बार-बार ताज़गी देता रहता है।

वे जज़बात और एहसासात जो किसी त्योहार की रूह की हैसियत रखते हैं उनका ताल्लुक़ या तो किसी शख़्सियत से होता है या किसी ख़ास मुल्क और मौसम से या फिर उनका रिश्ता किसी ख़ास तारीख़ी वाक़िए (ऐतिहासिक घटना) से होता है, या फिर उसके पीछे सिर्फ़ कोई रिवायत या अंधविश्वास काम कर रहा होता है।

इस्लाम एक यूनिवर्सल और विश्व-व्यापी दीन है, इसलिए इसके दूसरे अहकाम (आदेश-निर्देश) की तरह इसके त्योहारों में भी विश्व-व्यापी शान पाई जाती है। इस्लाम किसी ऐसे नज़रिए को तस्लीम नहीं करता जो किसी पक्षपात और तंग नज़री पर आधारित हो, या जो फ़िरक़ा-परस्ती और पक्षपात का कारण बन सकता हो। इस्लाम ने सारी ही इनसानियत के लिए एक जैसी अहमियत रखनेवाली रिवायतों और जज़बात को अहमियत दी है।

ईदुल-फ़ित्र इस्लाम का एक अहम त्योहार है। यह त्योहार एक ऐसे मौक़े पर मनाया जाता है जब लोग रमज़ान के महीने-भर के रोज़ों और तरावीह और क़ुरआन की तिलावत आदि अहम तरबियती और रूहानी प्रोग्रामों को पूरा करके फ़ारिग़ हुए होते हैं।

क़ुरआन से मालूम होता है कि रमज़ान के रोज़ों की बड़ी अहमियत है। इन रोज़ों को पूरे शुऊर के साथ रखना इतनी बड़ी इज़्ज़त की बात है कि आमतौर पर लोग इसका तसव्वुर भी नहीं कर पाते। क़ुरआन बताता है कि रोज़े का अस्ल मक़सद तक़वा हासिल करना है। यानी रोज़े का अस्ल मक़सद यह है कि उसके ज़रिए से आदमी के अन्दर अल्लाह का ख़ौफ़ और उसकी बड़ाई का एहसास पैदा हो जाए और वह हर तरह की बुराइयों से बचते हुए एक ज़िम्मेदाराना ज़िन्दगी बसर करनेवाला बन सके और इस क़ुरआन का हक़ पहचाने जो इस मुबारक महीने में उतरा है, जो अपने अन्दर सारे ही इनसानों के लिए हिदायत और रहनुमाई का सामान रखता है, जिसकी हैसियत फ़ुरक़ान की है, यानी जिसके ज़रिए से आदमी हक़ और नाहक़ और खरे-खोटे को आसानी के साथ पहचानकर अलग कर सकता है। क़ुरआन अपने अन्दर ऐसी रौशन दलीलें रखता है कि इसकी रहनुमाई में ज़िन्दगी बसर करनेवाला कभी गुमराह नहीं हो सकता। रोज़ा रखकर इनसान हक़ीक़त में अल्लाह की अज़मत और उसकी बड़ाई को तस्लीम करता और उसका इज़्हार करता है। उस पर अल्लाह के बड़ा और महान होने का एहसास इतना ज़्यादा छाया होता है कि खाना-पीना उसके मुक़ाबले में कोई हैसियत नहीं रखता।

अल्लाह की बड़ाई को स्वीकार न करना बड़ी नासमझी और नाशुक्री की बात है। अल्लाह उन लोगों से, जो उसकी किताब रखते हैं, यह चाहता है कि वे उसकी नेमतों से फ़ायदा उठाकर नाशुक्रे नहीं बनेंगे, बल्कि उसके शुक्रगुज़ार होंगे और उनकी यह शुक्रगुज़ारी सिर्फ़ ज़बान की हद तक नहीं रहेगी, बल्कि ज़िन्दगी के हर मामले में, चाहे वे घरेलू मामले हों या लेन-देन और तिजारत के मामले हों या राजनीतिक और अन्तर्राष्ट्रीय, वे हर मामले में और तमाम कामों में अल्लाह की हिदायत का लिहाज़ रखेंगे और अपने

दिल में किसी तरह की तंगी महसूस नहीं करेंगे, बल्कि इसके बरख़िलाफ़ उनका हाल यह होगा कि वे अल्लाह के बेहद शुक्रगुज़ार होंगे और शुक्र का यह जज़्बा उसके एहसानों को पहचानने के साथ बढ़ता चला जाएगा। यह जज़्बा कभी ठण्डा नहीं पड़ेगा। इसलिए कि यह जज़्बा उस हस्ती की मेहरबानियों की वजह से पैदा हुआ है जिसकी मेहरबानियाँ कभी ख़त्म होनेवाली नहीं हैं।

रमज़ान में आदमी की जो तरबियत होती है, इबादतों के ज़रिए से उसके शुऊर में जो पाकीज़गी आ जाती है, उससे उसकी जो शख़्सियत बनती है उसके अख़लाक़ और किरदार को जो क़ुव्वत हासिल होती है और उसकी रूह को जो पाकीज़गी हासिल होती है वह एक ऐसी नेमत है कि उस पर हज़ार ख़ुशियाँ निछावर की जा सकती हैं।

हवा, पानी, ग़ल्ला और रोज़गार के दूसरे साधन, यक़ीनन ये सारी चीज़ें अल्लाह की मेहरबानी और उसका एहसान ही हैं, लेकिन हम सब जानते हैं कि ये नेमतें सिर्फ़ इनसान के जिस्मानी वुजूद के लिए हैं, जबकि क़ुरआन और उससे मिलनेवाली हिदायतें ऐसी नेमतें हैं जो इनसान की रूह और उसके अख़लाक़ के लिए हैं। यह एक हक़ीक़त है कि अल्लाह की तरफ़ से रहनुमाई का यह सामान इनसानियत के लिए बड़ी नेमत है। इस नेमत का पूरा शुऊर उस वक़्त होता है जब उसकी मेहरबानी से एक पाकीज़ा ज़िन्दगी हासिल होती है, अल्लाह के दिए हुए उसूल और ज़ाब्तों पर इनसानी तहज़ीब (संस्कृति और सभ्यता) बनती है, दुनिया को अमन और शान्ति मिलती है, दिलों को सुकून मिलता है और ज़रूरतमन्दों की ज़रूरतें पूरी होती हैं।

संक्षेप में यह कि ईदुल-फ़ित्र का त्योहार इस एहसास को उभारता है कि हमको जो चीज़ मिली है वह ग़ैरमामूली है। यह त्योहार साझा ख़ुशियों और साझा जज़बात के इज़हार का त्योहार है। चुनांचे इसे दुनिया के सारे ही मुसलमान मनाते हैं, चाहे उनका ताल्लुक़ किसी भी नसल और रंग से हो। सब ही इस बात पर अल्लाह का शुक्र बजा लाते हैं कि उन्हें इसकी तौफ़ीक़

मिली कि उन्होंने अल्लाह की महानता और उसकी बड़ाई के इज़हार को अपनी ज़िन्दगी ठहराया और उसका तक़वा इख़्तियार करने के लिए कोशिशें करते रहे, रमज़ान के रोज़े रखे और अपने सजदों के ज़रिए से अल्लाह की बड़ाई के मुक़ाबले में अपने-आपको तुच्छ जानते रहे और इस एहसास को ज़िन्दा रखा कि अल्लाह की बड़ाई के आगे हर बुलन्द चीज़ हक़ीक़त में अधम और पस्त है और उसकी रिज़ा और ख़ुशी के मुक़ाबले में हर चीज़ तुच्छ है। वे इस पर शुक्र करते रहे कि अल्लाह ने उन्हें अपनी बड़ाई और महानता से आगाह किया और उन्हें उन लोगों में शामिल किया जो उसकी महानता को स्वीकार करते और इनसानियत के हमदर्द बनकर दुनिया में जीना चाहते हैं।

ख़ुशी और प्रसन्नता के इज़हार के जो मुहज़्ज़ब और सभ्य तरीक़े होते हैं, ईदुल-फ़ित्र में उन्हीं तरीक़ों को अपनाने का हुक्म दिया गया है। हमें जिन तरीक़ों से रोका गया वे असभ्य तरीक़े हैं, जैसे अश्लीलता भरे गाने, राग-रंग, शराब और गाली-गलौच आदि। इस त्योहार में उन ही रस्मों को रखा गया है जो अश्लीलता, बेहयाई और असभ्यता से बिलकुल पाक हैं। तफ़रीह और आनन्द को तहज़ीब और सभ्यता के दायरे में रखा गया और इस बात की ताकीद की गई कि त्योहार मनाने में संजीदगी और सम्मान को हरगिज़ आघात न पहुँचे।

ईदुल-फ़ित्र ऐसा त्योहार है जिसे एक इबादत की हैसियत हासिल है। अल्लाह की हम्द और तारीफ़ और उसकी बड़ाई को इसमें शामिल किया गया है। यह त्योहार हक़ीक़त में शुक्र के इज़हार का त्योहार है। ईदुल-फ़ित्र के मौक़े पर यह पहलू पूरे तौर पर उभरा हुआ नज़र आता है।

इस त्योहार के मौक़े पर मर्द, औरत और बच्चे सभी सुबह को नहाते हैं, अच्छे-से-अच्छा कपड़ा जो उन्हें मिल जाता है, पहनते हैं, ख़ुशबू लगाते हैं। इस बात की ताकीद है कि इस ख़ुशी के मौक़े पर ग़रीबों और मुहताजों को हरगिज़ न भूला जाए। इसलिए सदक़ा-ए-फ़ित्र वाजिब किया गया ताकि कोई शख़्स भी समाज में उस दिन भूखा न रह जाए।

हुक्म है कि सभी लोग बस्ती से बाहर निकलकर ईदगाह में जमा हों, रास्ते में तकबीर पढ़ते हुए यानी अल्लाह की बड़ाई बयान करते हुए निकलें, इसलिए कि अल्लाह से ताल्लुक़ ही ज़िन्दगी का अस्ल सरमाया है, बल्कि अस्ल ज़िन्दगी और हमारी ख़ुशियों की बुनियाद है। फिर यह भी हुक्म दिया गया है कि जिस रास्ते से ईदगाह आएँ उसके बजाय दूसरे रास्तों से वापस हों, ताकि बस्ती का हर हिस्सा अल्लाह की बड़ाई के ज़िक्र से भर जाए।

आमतौर से लोग नहीं जानते कि ईद में सुरूर और ख़ुशी और बेहतरीन जज़्बात का मुकम्मल इज़हार उस वक़्त होता है जब ईदगाह में लोग अल्लाह के सामने सफ़ें (क़तार) बनाकर खड़े हों और सब एक साथ उसके सामने सज्दे में गिर जाते हैं। सबसे ज़्यादा ख़ुशी और मुहब्बत भरी हालत इनसान के लिए वही है जिसमें उस ताल्लुक़ का इज़हार होता है जो अल्लाह और उसके बन्दों के बीच पाया जाता है। ज़ाहिर है कि यह हालत अल्लाह के सामने झुकने और सजदा करने से बढ़कर कोई दूसरी नहीं हो सकती। अल्लाह और बन्दे के बीच पाए जानेवाले ताल्लुक़ और रिश्ते का इज़हार ज़िन्दगी का सबसे मीठा नग़मा है। ज़िन्दगी का सबसे ज़्यादा मधुर और आनन्दमय पल वही है जब बन्दा अल्लाह के आगे सज्दे में होता है। इसी लिए अल्लाह के सामने सज्दा किए बग़ैर ईद का यह त्योहार नहीं मनाया जा सकता। इसी तरह ग़रीबों, मुहताजों और बेसहारा लोगों को भूलकर भी यह त्योहार नहीं मनाया जा सकता। इस त्योहार में ख़ुदा के बन्दों के हक़ का भी पूरा ख़याल रखा गया है।

यह त्योहार बताता है कि सारे ही इनसान एक कुटुम्ब और कुंबे की हैसियत रखते हैं। इनमें आपस में हमदर्दी और एक-दूसरे की मदद का ताल्लुक़ होना चाहिए। यह त्योहार अपने दामन में सारी इनसानियत को समेट लेता है। सारे ही इनसानों को ख़ुशी में शरीक देखना इस्लाम की फ़ितरत है। ईदुल-फ़ित्र के ज़रिए से इस्लाम की नुमाइन्दगी होती है और जाहिलियत का इनकार होता है। काश, हम ईदुल-फ़ित्र की हक़ीक़त और उसकी अहमियत को समझ सकते!